...हैं रंगीन तथा जावका अनुभवी मशीनमैनकी जो ...र काम कर सकें और ...न्दु प्रिंटिंग प्रेस, २१, ...२९८१८।
(३३२१३)

...मेट्रिक मॉडल पास अनुभवी ...दफ्तर के काम में कम ...ल का अनुभव हो। ...७०) मासिक। मिलें: ...म्पनी, नांगिया पार्क, ...ल्ली-६। (३३२१२)

...अनुभवी मालियों की ...रत अनुभव के आधार ...०) मासिक तक। विव- ...र करें:—दि ग्वालियर ...(वीविंग) कं. लिमि. ...र नगदा (म. प्र.)
(३३१९६)

...इलेक्ट्रिक सप्लाईके ...५०) हैं. बी. ७.५०.

श्रीमती शकुन्तला देवी बजरिय श्री कृष्णा मुरारी बनाम मिस निर्मला जोशी मुकदमा मन्दरजा अनवान में आम इत्तला दी जाती है कि जायदाद मौसूमा थडीलाज ब्लाक-डी म्युनिसिपल नं. ३, ईस्ट पार्क रोड, करोलबाग, दिल्ली ता. २९-१२-६२ को प्रातः ८ बजे से पूर्वाहन ११ बजे तक मौके पर नीलाम की जायेगी। शरायत मौके पर।

भगवानसिंह एडवोकेट
व
एम. एस. कोचर एडवोकेट,
कोर्ट आक्शिनियर्स, दिल्ली।

(२९९७९)

"आवश्यकता है"

छः मास की अवधि के लिए जनरल अस्पताल, चंडीगढ़ में सीनियर तथा जूनियर हाउस सर्जन्स के पदों के लिए मेडिकल ग्रेजुएट्स (पुरुष एवं महिला) से आवेदनपत्र मांगे जाते हैं। सीनियर हाउस सर्जन्स को किसी मान्यता प्राप्त चिकित्सालय में जूनियर हाउस सर्जन के रूप में कार्य किया हुआ होना चाहिए।...

...तथा क्लाथ वेल्स और क्लाथ चिन्डीजकी आयरन हूप्स का विक्रय।

उपरोक्त वस्तुओं का स्टाक ३१ मार्च ६३ तक उपलब्ध होने की संभावना है जिसका विक्रय नीलाम द्वारा मिल के भवन में, २६ दिसम्बर, ६२ को प्रातः १०॥ बजे किया जायेगा। विस्तृत विवरण के लिए कृपया जनरल मैनेजर से सम्पर्क करें।

(२९९२७)

नं. ४ विंग, ए. एफ. स्टेशन, आगरा

१ अप्रैल १९६३ से ३१ मार्च १९६४ तक एक वर्ष के लिए निम्नलिखित सेवाओं के हेतु भारतके राष्ट्रपति की ओर से उन ठेकेदारों से, जिनके नाम नं. ४ विंग, एयर फोर्स स्टेशन, आगरा के स्वीकृत रजिस्टर पर पंजीकृत हैं, २ जनवरी १९६३ तक मुहरबन्द टेंडर के लिए आवेदनपत्र मांगे जाते हैं:—

(ए) बैरक तथा सिक क्वार्टर्स के कपड़े धोने के लिए...

एस. एम. जैन मांटेसरी...
...धन तथा सोने...

पश्चिमी...
सैनिक स...

❀ ॐ तत्सत् ब्रह्मणे नमः ॐ नमोनिरञ्जनाय ❀

श्री पातञ्जल योग रसायन

(श्री पातञ्जल योग दर्शन का, शुद्ध तथा ब्रह्मनिष्ठ अनुभवी महा योगीश्वर से श्रवण किया हुआ हिन्दी भाषानुवाद)

लेखक :—

कांधला ज़िला मुजफ्फर नगर निवासी,

श्री दुर्गाप्रसादात्मज सीताराम गुप्त

" अशुभ भावना त्याग करो सब । करो शुद्ध भाव संयोग ॥
राग सोग सब मिटें तुम्हारे । बीतराग शिवरति है योग ॥

जिसको बाबू रामस्वरूप साहब रिटायर्ड पोस्ट मास्टर कांधला निवासी ने साधु सेवार्थ प्रकाशित किया

श्लोकः- "न चाहं कामये राज्यं न सुखं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःख तप्तानां मार्त्तानां आर्ति नाशनम् ॥"

(महाभारत)

द्वितीया वृत्ति २००० मूल्यः— नित्य निरन्तर अभ्यास

॥ ॐ तत सत ब्रह्मणे नमः ॥

❀ श्री मङ्गल मूर्त्तये नमः ❀

श्री पातञ्जल योग रसायन

निवेदन

श्री पातञ्जल योग मार्ग जो, है यह श्रुति मत के अनुकूल।
कठवल्ली में लिखा उसे मैं, लिखता हूँ अनुवादित मूल॥

मन के सहित पञ्च ज्ञान इन्द्रिय, सब निश्चल जब रहते हैं।
तज दे क्रिया बुद्धि भी अपनी, उसे परम गति कहते हैं॥

योग मानते हैं उसको जो, इन्द्रिय मन की स्थिर मती।
सावधान तब योगी रहता, जन्म नास युत योग गती॥

प्रणव धनुष है बाण आत्मा, ब्रह्म लक्ष है यों कहिये।
सावधान हो बेधन करिये, शरवत् तन्मय हो रहिये॥

यह पातञ्जल योग रसायन, टीका सुगम पसारा है।
सीताराम, वह जन सुख पावैं, जिन्हें योग अति प्यारा है॥

लेखकः—सीताराम
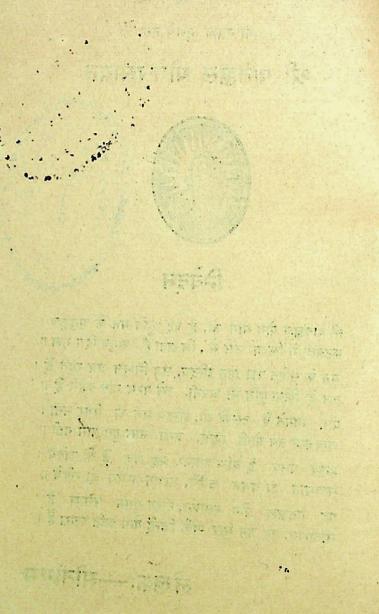
आवश्यक निवेदन

प्रिय पाठक गण !

आज कल भारत वर्ष में अविद्या का साम्राज्य है, यदि विद्या वस्तुतः भारत वर्ष में होती और थोड़े भी जन विद्वान् कहलाने के योग्य होते तब भी यहां से अंधकार उठ जाता, और ज्ञान का प्रकाश होने से, भारतवर्ष की बहु जनता, दीन दुखित, पराधींन, दरिद्री, असत्य वादी, लोभी, व्यभिचारी और अनर्थकारी न होती। आत्म सम्मान और आत्म गौरव का तो राग, सम्पूर्ण पठित समाज के लोग अलाप रहे हैं, परन्तु यह तो कहिये कि "यतो धर्मो ततो जयः" क्या यह शास्त्र वाक्य अप्रमाणिक है ? फिर कहिए कि क्या आप निष्कपट धर्मात्मा स्वालम्बी हैं, यदि नहीं हैं तो क्या आप जी तोड़ कर धर्मात्मा स्वालम्बी होने का यत्न करते हैं ? वस्तुतः यह बात है कि भारत वर्ष को राज-यक्ष्मा यानी तपेदिक का सा रोग हो रहा है, जो चिकित्सा की जाती है बेकार पड़ती है। नस नस में इसके रोग विष भरा है, यह त्रीदोष से ग्रस्त हैं, इसके, कफ, वात, पित्त अथवा सत्व, रज, तम तीनों धातु कुपित हो रहे हैं, इसको कोई कुशल योगी, अच्छा करे तो कर सके। जब तक इसके मन इन्द्रियां और शरीर की एक साथ नित्य निरन्तर दीर्घ काल, चिकित्सा नहीं होगी, तब तक अच्छा होने की आशा दुर्लभ है। सुपथ्य अल्प आहार ग्रहण और कुपथ्य त्याग करने पड़ेंगे, कटु औषधि खानी होगी और चिकित्सकों पर भी विश्वास करना योग्य है।

यदि ऐसा इष्ट हो तो श्री कृष्ण महाराज, पातञ्जल महर्षि जैसे चिकित्सकों पर विश्वास करके सुपथ्य भोग पूर्वक मन इन्द्रियों का निग्रह कीजिये। इसी वास्ते यह श्री पातञ्जल योगदर्शन की सरल हिन्दी भाषानुवाद का आरम्भ किया है। इस पातञ्जल योग दर्शन को लेखक स्वयं पूज्य पाद श्री १०८ स्वामी मङ्गलनाथ जी महाराज से, हृषिकेश में श्रवण किया करता था। श्री महाराज भारत वर्ष के विख्यात् महा योगीश्वर और वेदान्त व्याकरण काव्य इत्यादिक शास्त्रों के भी ज्ञाता अगाध समुद्रवत् थे, ऐसी मेरी धारणा है। मैं, सूत्रों का अर्थ श्रवण करके उनको विचार कर साथ ही साथ गृह पर आकर उन श्रुत अर्थों को विचार कर, लिख भी लिया करता था क्यों कि विस्मृत होने पर भी जानने का अवसर मिले न मिले यह सम्भावना थी। इस लेख में उन्हीं से श्रवण किए हुये सूत्रों का अर्थ है। टीका में, व्यास भाष्य में से, अति उपयोगी चुने हुए वाक्यों का, हिन्दी भाषानुवाद है। शेष ( ) इस चिन्ह में वा अन्यत्र लिखी हुई व्याख्या, लेखक के स्वअनुभव के अनुसार है त्रुटि रहित तो केवल परमात्मा है, और अवतार धारी भगवान् माने हुए श्री कृष्ण श्री राम आदिकों में भी लोग दोष निकालते हैं, फिर यह अगण्य अमान्य अधम शरीर तो सम्पूर्ण त्रुटियों से पूर्ण क्यों न होगा ? फिर भी यदि सार ग्राही दृष्टि से देखा जावे, तो इस लेख के विचारने से विनोदार्थ पढ़ने से, अथवा उपहास पूर्वक दोष दर्शन से भी पढ़ने वाले पाठक गणों को लाभ ही होगा। सूत्र, थोड़े अक्षरों में महान गम्भीर विस्तृत सिद्धान्तमूलकसारभूत अर्थों का बोधन करते हैं, इस लिये उनका यथावत् समझने के लिए सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता है, शीघ्र ही तर्क युक्त मति नहीं बना लेनी चाहिये। इसके विभूति पाद में भौतिक विज्ञानी यूरूप वालों के साइन्स विज्ञान शास्त्र के अनुसार उदाहरण देने का नवीन प्रयास किया गया है। मैं ने जो कुछ श्रवण किया उसको अनुभव करने की चेष्ठा की उसके अनुसार अभ्यास द्वारा अनुष्ठान भी तब तक करता रहा, जब तक धारणा, प्रयास रहित स्वभाव–भूत न हो गई, इस लिये

यह टीका पाठकों को उन पुरुषों की टीका की अपेक्षा से अवश्य अधिक बोध सम्पन्न करेगी, जिन्होंने केवल व्याकरण के पण्डितों से योग दर्शन पढ़ कर टीका लिखदी हैं और वह बाजार में पढ़ने को मिल जाती हैं। लोगों का पुरातन विद्याओं का अभ्यास छूट जाने से प्रमाद के कारण तथा भ्रमजाल में फंस जाने से संस्कार भ्रष्ट हो जाने के कारण, योग विद्या का नाम सुनते ही यह भावना हो जाती है कि यह विद्या केवल ऐसे महा पुरुषों के लिये है जो कहीं गुहा कन्दरा आदिकों वा हिमाचल, विन्ध्याचल पर्वतों में गुप्त रूप से अभ्यास करते हैं और हम लोगों का इसमें सामर्थ्य कहां हो सकता है। शास्त्र के विचार से ज्ञान होगा कि वड़ी बड़ी सिद्धियों के प्राप्त करने के योग्य साधन चाहें साधारण जनों को दुर्लभ हों परन्तु अपने मन इन्द्रियों के संयम पूर्वक यथावत् आत्म निग्रह में यथावत् यम नियम आसन प्रायाणाम आदिक के साथ वैराग और ईश्वर प्रणिधान के सम्पादन में क्या कठिनाई है ? यदि इतने ही साधन दृढ़ता पूर्वक अनुष्ठान किए जावें, तो उनका फल क्या कम लिखा है ?।

और भी अधिक फल न सही तब भी मानसिक शारीरिक बल सम्पन्न होकर, ईश्वर को प्रसन्न करके, धर्मात्मा होकर, हम अपने आप को और भविष्यत् सन्तान को अविद्या के परिणाम और दुर्गति से तो बचा सकते हैं, यह क्या थोड़ा लाभ है। दंभी योगियों ने स्वयं पथभ्रष्ट होकर जनता को ठगने के लिए बड़े २ अर्थवाद पूर्वक ढोंग रचना रच कर उनका अपकार किया और कर रहे हैं, गुदा की वस्ती क्रिया, नासिका में नेति, श्लेष्म हृदय से निकालने को धौति क्रिया इत्यादिक सीख कर ही सिद्ध बन गये, द्रव्यापहरण पूजा ग्रहण के साथ जनता को रोगी बना कर अश्रद्धा फैला दी। हमारे लिए त्रिकाल सन्ध्योपासना विधि इसी वास्ते रक्खी गई थी कि हमारा प्राणायाम के सहित ईश्वर प्रणिधान, स्वाभाविक दैनिक क्रियावत होता रहे। यम नियम तो हमारे आर्य पुत्र होने के कारण हमारे स्वाभाविक धर्म थे, वे बिनो प्रयास हमको अपने पूर्वजों की देखा देखी प्राप्त थे, परन्तु समय

के प्रभाव से हम उनसे बहिर्मुख होकर इतने पतित होगये कि अपने से उनका अनुष्ठान होना ही असम्भव हो गया। कौन नहीं जानता है कि असत्य बुरा है, हिंसा निषिद्ध है, अधर्म से धन को उपार्जन नकरो चोरी न करो, पर स्त्री मातृ समान है, नारी भगवती स्वरूप है दुर्गा रुप होने से ही उसकी घर घर पूजा होती हैं। सब जानते हैं परिगृह दुःख रूप है, काम क्रोध लाभ नरक के द्वार हैं, ईश्वर उपास्य है, गुरु देवता महान पुरुष विद्वान ब्राह्मण साधु महात्मा माता पिता बहिन बेटियां सब पूजने योग्य हैं, तथा धर्म रक्षक राजा भी पूज्य है। इतना जानने पर भी कितने जन ऐसे होंगे जो कटिबद्ध होकर इन धर्मों का अनुष्ठान करते होंगे वा करने का प्रयत्न करते होंगे वा न होने का पश्चाताप करते होंगे ? यदि इतना ही किया जावे तो क्या यह सद्गृहस्थ होते भी इनका अनुष्ठान कर्ता मनुष्य योगी ब्रह्मचारी महात्मा कहलाने के योग्य नहीं हैं और क्या उसके उपदेश का थोड़ा प्रभाव जनता के चरित्र पर पड़ेगा ? उसका उदाहरण जनता में श्री मालवीय जी गांधी जी इत्यादिक हैं जितना इनका योगानुष्ठान है उतना उनका प्रभाव है शेष ऐसे भी बहुत नहीं तो थोड़े कहीं २ अवश्य होंगे जो इनका अनुष्ठान करके स्वयम् संतोष का सुख भोग करते होंगे इस लिए योग का घर २ प्रचार होना आवश्यक है ॥

॥ इत्योम ॥

कांधला — आपका

ज्येष्ठ सुदी एकादशी सं० १९९१ — **सीताराम**

॥ हरिः ॐ तत् सत् ब्रह्मणे नमः ॥

॥ श्री मङ्गल मूर्त्तये नमः ॥

॥ अथ श्री पातञ्जल योग दर्शनम् ॥

❁ प्रथमः समाधि पादः ❁

मूलः—अथ योगानुशासनम् ॥ १ ॥

अर्थः—अब योग के अर्थात् समाधि के लक्षण, उसके उपाय, उसके अवान्तर भेद और फल के निरूपण करने वाले इस शास्त्र का आरम्भ करते हैं ॥ १ ॥

टीकाः—इस सूत्र में अथ शब्द आदि में होने से मङ्गला चरण के वास्ते है और 'अथ' शब्द का प्रारम्भ करने की सूचना के वास्ते भी प्रयोग होता है, इस लिये यहां भी यही प्रयोजन जान लेना ॥

हिंरण्यगर्भ ने जो प्रथम योग का उपदेश किया है उसके अनुसारी, यह संक्षिप्त योग शास्त्र है, यह अनुशासन पद से कहा है. अर्थात् योग शास्त्र का आरम्भ करते हैं यह जान लेना ॥

योग नाम समाधि का है ॥ युजिर धातु से जो संयोग अर्थ निकलता है. सो यहां न समझना ॥

वह समाधि भी सार्वभौम है. अर्थात् सब क्षिप्त मूढादि अवस्थाओं वाले चित्त का धर्म है ॥ समाधि को आत्मा का धर्म न समझ लेना और न उसको योग का अङ्ग ही समझ लेना, किन्तु स्वयं स्वतन्त्र जानना कि वही समाधि योग है ॥ क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध यह पांचों भूमियां यानी चित्त की अवस्थाऐं हैं ॥ सदा निरन्तर विजातीय प्रत्यय वाला चित्त, क्षिप्त कहलाता है ॥ निद्रा, तन्द्रा, आलस्य, प्रमाद, मोह इत्यादिक तामसी दोषों से युक्त चित्त मूढ कहलाता है ॥ (इन दोनों चित्त की अवस्थाओं में तो समाधि का होना ही असंभव है) ॥

कभी थोड़ा सजातीय यानी एकाग्र वृत्तियों वाला और अधिक तो विजातीय प्रत्यय वाला ऐसा जो चञ्चल चित्त है सो विक्षिप्त कहलाता है ॥

निरन्तर एक रस सजातीय वृत्तियों वाला चित्त एकाग्र कहलाता है ॥

सर्व वृत्तियों के अभाव वाला चित्त निरुद्ध कहलाता है ॥ इन पिछली तीन चित्त की अवस्थाओं में से, विक्षिप्त चित्त में विक्षेप अधिक होने से, गौण रूप समाधि, योग पक्ष में गिनी नहीं जासकती है ॥ जो योग एकाग्र चित्त में, यथार्थ शास्त्रीय विषयों को साक्षात्कार कराता है और क्लेशों को अत्यन्त क्षीण करता है कर्म रूप बन्धनों को ढीला करता है, तथा निरोध को अपने सन्मुख करता है, सो संप्रज्ञात योग है ऐसा विद्वान् योगी कहते हैं ॥

वह संप्रज्ञात योग भी वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत और अस्मितानुगत इस भेद से आगे जता देंगे ॥ सर्व वृत्तियों के निरोध होने पर असंप्रज्ञात समाधि होती है ॥ १ ॥

तिस द्विविध योग के लक्षण कहने की इच्छा से यह सूत्र प्रवृत्त होता है :—

मूल :—योगश्चित्त वृत्ति निरोधः ॥ २ ॥

अर्थ :—(प्रयत्न विशेष से राजस तामस सम्पूर्ण) चित्त वृत्तियों का निरोध होना, योग है ॥ २ ॥

टीका :—इस सूत्र में चित्त के साथ सर्व शब्द का ग्रहण नहीं है इस लिये संप्रज्ञात भी योग है ऐसा कहते हैं ॥

चित्त, प्रख्या, अर्थात् ज्ञान के सत्वस्वभाव वाला, प्रवृत्ति अर्थात व्यापार रूप रजो भाव वाला और स्थिति अर्थात लय होने से तामस स्वभाव वाला होने से तीन गुणों वाला है ॥

ज्ञान रूप ही चित्त सत्व, रजो गुण, तमो गुण से मिला हुवा, अणिमादि सिद्धि रूप ऐश्वर्य और दिव्य विषय की इच्छा वाला होता है ॥ (इससे विक्षिप्त भूमि कही) ज्ञान वही प्रधान चित्त सत्व, तमोगुण

से दबा हुआ अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य युक्त होता है। (यह मूढ क्षिप्त भूमि कही)॥

वही चित्त सत्व, मोह रूप आवरण यानी तमोगुण के अत्यन्त क्षय वाला, सर्व ओर से प्रकाशित हुवा, थोड़े रजोगुण के लेश से व्याप्त हुवा, धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यगामी होता है॥

वह ही सत्व प्रधान चित्त रजोगुण के लेश रूप मल से रहित अपने चित्त स्वरूप में स्थित (अर्थात वृत्ति परिणाम से रहित) बुद्धि और पुरुष के विवेक-ख्याति स्वरूप धर्म–मेघ ध्यान से युक्त होता है॥ (धर्म-मेघ, निरन्तर आत्मा तथा अनात्मा के विवेक वाली अवस्था है वहीं निरोध और उसके संस्कारों का प्रवाह है)॥ वह निरन्तर प्रत्यय की आवृत्ति, पर-प्रसंख्यान है ऐसा ध्यानी योगी कहते हैं॥

चिति शक्ति अपरिणामी यानी कूटस्थ है, किसी में प्रवेश करके संचार नहीं करती है, यानी निर्लेप है ऐसी अप्रतिसंक्रमा है, आप नहीं देखती है परन्तु बुद्धि ने इन्द्रिय द्वारा जिसको विषय दिखाये हैं ऐसी दर्शित-विषया है, शुद्ध है यानी किसी अन्य से मिल कर अशुद्ध नहीं है और अनन्त है अर्थात देश काल के परिच्छेद से रहित है॥

(पूर्वोक्त कथन से ज्ञात हुआ कि यही चिति शक्ति उपनिषदों में ब्रह्म, परमात्मा, आत्मा, पुरुष इत्यादि नामों से विख्यात है क्यों कि ब्रह्म का लक्षण श्रुति ने सत्य ज्ञान अनन्त लिखा है। सोई चिति शक्ति है)॥

और यह विवेक-ख्याति अर्थात विवेक ज्ञान रूप चित्तवृत्ति सत्व गुण वाली है चिति से विपरीत है।

इस वास्ते उस विवेक-ख्याति से विरक्त चित्त उस ख्याति को भी निरुद्ध करता है॥

सो निरोधावस्थ चित्त संस्कार मात्र शेष होता है। वह निर्बीज समाधि है॥

इस अवस्था में वृत्ति से कुछ विषय नहीं किया जाता इस लिये असंप्रज्ञात है॥

वह चित्त की वृत्तियों का निरोध रूप योग दो प्रकार का है सो कहा, संस्कार मात्र शेष इस अवस्था वाले चित्त में विषय का अभाव होने से बुद्धि का प्रकाश रूप पुरुष किंस्वभाव अर्थात निःस्वरूप होगा इस विज्ञानवाद की शंका का निषेध करते हैं:—

अब योग के सिद्धान्त के अनुसार निरोध काल में आत्मा के स्वरूप को और कैवल्य मुक्ति रूप प्रयोजन को कहते हैं, अन्यथा अनर्थ की प्राप्ति रूप संसार ही होगा ॥

मूल:—तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ ३ ॥

अर्थ:—तदा=तब निरोध काल में द्रष्टुः=द्रष्टा की ॥ स्वरूपे अवस्थानम्=स्वरूप में स्थिति होती है ॥ (इससे कैवल्य मुक्ति रूप योग का प्रयोजन कहा) ॥

टीका:—तब निरोध काल में चिति शक्ति स्वरूप में स्थित होती है जिस प्रकार कि कैवल्य में होती है अर्थात समाधि और कैवल्य एक ही वस्तु है ॥ ३ ॥

चित्त के व्युत्थान होने पर तो चिति शक्ति यद्यपि स्वरूप में स्थित ही है तो भी जैसे कैवल्य है वैसे नहीं है ॥ तब कैसे होती है ? बुद्धि द्वारा द्रष्टा को विषय दिखाये जाने से (द्रष्टा रूप) चिति शक्ति बुद्धि की वृत्तियों के समानाकार होती हैं ॥ सोई कहते हैं ॥

मूल:—वृत्ति सारूप्यमितरत्र ॥ ४ ॥

अर्थ:—इतरत्र=स्वरूपावस्थान से अन्यत्र व्युत्थान काल में (द्रष्टा की) वृत्तिसारूप्यं=वृत्ति के साथ समानाकारता होती है (अर्थात भोग संस्कार होता है) ॥

टीका:—व्युत्थान काल में जो चित्त की वृत्तियां हैं, पुरुष उन वृत्तियां के समानाकार होता है, तब अपनी असंगता, अनन्तता, अविकारता और शुद्धता को न जानता हुवा अपने आप को कर्त्ता भोक्ता संसारी दुखी सुखी मानता है, (इसी को वेदान्त में श्रुति कहती है " स समानः सन् ध्यायतीव लेलायतीव " अर्थात् वह आत्मा बुद्धि के समान होकर यानी बुद्धि के साथ तादात्म्याध्यास को प्राप्त होकर

मानो ध्यान करता है मानो चलता है। यह बृहदारण्यक उपनिषद की श्रुति है)॥

इसी बात को पञ्च शिखाचार्य ने कहा है कि :—

अध्यास काल में एक ही ज्ञान होता है अर्थात् द्रष्टा और बुद्धि का मिला हुवा ही ज्ञान भान होता हैं, जैसे कि 'मैं घर को नहीं जानता हूं' यहां पुरुष का और बुद्धि का मिला हुवा एक ही ज्ञान भान हो रहा है ऐसे ही अन्यत्र जान लेना।

चित्त, चुम्भक के सदृश, सन्निधि मात्र से पुरुष स्वामी का उपकारी है, दृश्य होने से, पुरुष, स्वामी का स्वं होता है॥ तिस कारण से पुरुष के चित्त वृत्ति को प्रकाशने में अनादि स्वं स्वामी सम्बन्ध हेतु है। वे वृत्तियां पुनः निरोध करने योग्य हैं॥ ४॥ चित्तों के बहुत होने से,

मूलः—वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टा क्लिष्टाः॥ ५॥

अर्थः—क्लिष्टाः अक्लिष्टा,=क्लिष्ट अक्लिष्ट भेद से॥ वृत्तयः पंचतय्यः= चित्तों की वृतियां पांच अवयवों वाली हैं॥ (प्रति पुरुष एक चित्त है, एक ही वृत्ति है सो पांच अवयवों वाली है, वहुत चित्त होने से वहुवचन कहा है)

टीकाः—क्लेश हैं हेतु जिनके अर्थात् अविद्यादि पञ्च क्लेश मूलक वृत्तियां जो कर्म राशी की बृद्धि में क्षेत्र रूप हैं सो क्लिष्ट वृत्तियां हैं॥ विवेक ख्याति विषय वाली गुणाधिकार की विरोधी अर्थात् पुनः प्रकृति महदादि संसार की विरोधी वृत्तियां अक्लिष्ट वृत्तियां हैं।

क्लिष्ट प्रवाह में पतित हुई भी यानी मध्य में आई हुई भी अक्लिष्ट वृत्तियां क्लिष्ट ही होती हैं। अक्लिष्ट प्रवाह में पतित अक्लिष्टों के छिद्रों में यानी अन्तराय अर्थात् अवकाश में होने वाली क्लिष्ट वृत्तियां क्लिष्ट ही होती हैं॥ (तात्पर्य्य यह है कि मोह या रागाकार क्लिष्ट प्रवाह के बीच में जो दया के वेष को धारण करने वाली अक्लिष्ट वृत्ति है वह दया नहीं है किन्तु मोह ही है क्लिष्ट ही है॥ वैरागादि अक्लिष्ट प्रवाह में आई हुई रागाकार क्लिष्ट वृत्ति क्लिष्ट ही हैं)॥

वैसी जाती वाले संस्कार, वृत्तियों से ही उत्पन्न होते हैं और

संस्कारों से वृत्तियां होती हैं ।। इस प्रकार वृत्ति संस्कार का चक्र निरन्तर चलता है ।। सो इस प्रकार का चित्त समाप्ताधिकार वाला हो अर्थात् भोग मोक्ष के कार्य से विनिर्मुक्त हो चुका हो तो आत्मा के सदृश स्थित होता है अथवा निरोध के आकार प्रकृति की ओर उलटे परिणाम को प्राप्त होता है ।। (वशिष्ठ जी के मतानुसार वृत्ति रहित चित्त, अचित हुवा, अपने कारण अधिष्टान्त रूप आत्मा में बाधित शान्त हो जाता है यानी आत्मा ही होता है ।। (चित चिति शक्ती है, बुद्धि प्रकृति के तकार के मिलने से चित्त रूपी दृष्य बन जाती है ऐसे ही बुद्ध के साथ प्रकृतिं "इ" रूप लगने से बुद्धि हो जाती हैं, प्रकृति कल्पित है, अधिष्टान में लीन यानी बाधित होने से या मिथ्या निश्चय होने से प्रकृति और उसके कार्य का अभाव है शेष आत्मा ही है वस्तुत: हुआ कुछ नहीं सब अजात ही था है और रहेगा ।।)

वे क्लिष्ट और अक्लिष्ट भेद से पंचधा यानी पांच पांच प्रकार की आकार वाली वृत्तियां हैं अर्थात प्रमाणादि पांच अवयवों वाली वृत्तियां हैं और फिर उनमें से एक एक के क्लिष्ट अक्लिष्ट भेद है पांच प्रकार के क्लेश होने से अविद्या आदिक पांच प्रकार की क्लिष्ट वृत्तियां हैं जिनका आगे निरूपण करेंगे ।। ५ ।।

मूल:—प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृतयः ।। ६ ।।

अर्थ:—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति यह पांच वृत्ति के अवयव हैं ।। ६ ।।

मूल:—तत्र प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ।। ७ ।।

अर्थ:—तत्र=तिन पञ्च अवयवों में से ।। प्रत्यक्षानुमानागमा:= प्रत्यक्ष अनुमान और आगम यह तीनों ।। प्रमाणानि = प्रमाण रूप अवयव हैं ।।

इन्द्रिय रूपी नाली द्वारा चित्त के वाह्य शब्दादिक का विषय के साथ स्पर्श या लेपन होने से, वाह्य वस्तु को विषय करने वाली सामान्य विशेष स्वरूप वाले अर्थ के विशेष निश्चय की प्रधानता वाली ऐसी जो वृति है सो प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाती है ।।

पुरुष का चित्त की वृत्ति के साथ, एक रस मिला हुवा यानी दोनों के परस्पर के मिश्रित हुए एकत्व भाव से प्राप्त हुआ जो वोध है सो फल यानी प्रमा है ॥

वुद्धि के समानाकार भासता हुआ वुद्धि का ज्ञाता पुरुष (प्रमाता) है, यह आगे कथन करेंगे ॥

अनुमेय, यानी जिसका अनुमान किया जाये, ऐसा जो साध्य विषय है उसका सपक्षों में व्यापकता रूप और विपक्षों अर्थात विजाती पक्षों से प्रथकता स्वरूप ऐसा जो सम्वन्ध है, उसको विषय करने वाली, सामान्य निश्चय प्रधान वृत्ति अनुमान है ॥ जैसे कि चन्द्र तारागण गतिमान हैं देशान्तर प्राप्ति होने से चैत्र की नाईं। यह तो गतिरूप अनुमेय की सपक्ष चैत्र में अनुवृत्ति है और विन्ध्याचल पर्वत का देशान्तर को प्राप्त न होना, अगति है, यह साध्य की विपक्ष पर्वत से व्यावृत्ति है ऐसे यों अनुमान दिखाया ॥

भ्रम प्रमाद, विप्रलिप्सा, करण-पाटव, इन दोषों से रहित, आप्त पुरुष का देखा हुआ वा अनुमान किया हुआ अर्थ दूसरे पुरुष में अपने समान बोध की उत्पत्ति के वास्ते शव्द द्वारा उपदेश किया जाता है ॥ शव्द से उपदिष्ट अर्थ को विषय करने वाली श्रोता की वृत्ति आगम प्रमाण है ॥ जिस आगम का विश्वास के अयोग्य वक्ता हो दृष्ट अनुमित अर्थ वाला न हो वह आगम वाधित होता है (यानी अप्रमाणिक है) मूल वक्ता दृष्ट अनुमेय अर्थ वाला होवे तो उसका आगम अवाधित यानी प्रमाणीक होता है ॥ (वेदान्त मत में सव प्रमाता प्रमाण प्रमेय व्यवहार अध्यस्त होने से अधिष्ठान में मिथ्या कल्पित यानी वाधित है वस्तुतः सव आत्मा है) ॥ ७ ॥

मूलः—विपर्ययो मिथ्या ज्ञान मतद्रूप प्रतिष्ठम् ॥८॥

अर्थः—मिथ्या ज्ञानं विपर्ययः=मिथ्या ज्ञान विपर्यय है ॥ अतद् रूप प्रतिष्ठम=जो वस्तु के स्वरूप में यथावत् स्थित नहीं होता है (विपर्यय भ्रम रूप उल्टा असद् भान है, जैसे रज्जू में सर्प का भ्रम वा मरू भूमि में मृग तृष्णा के जल का भासना मिथ्यां ज्ञान

है वह विपर्यय है तद्वत् अन्यत्र जान लेना)॥

टीका:—वह विपर्यय किस लिये प्रमाण नहीं है, क्यों कि प्रमाण से बाधित हो जाता है, प्रमाण अबाधित (सत्य) अर्थ को विषय करता है, वहां अप्रमाण का प्रमाण से बाध होना देखा है इसमें यह दृष्टान्त है कि जैसे द्विचन्द्र दर्शन यथावत् सत्य एक चन्द्र दर्शन से बाधित हो जाता है यानी मिथ्या जान लिया जाता है, वह विपर्यय था, ऐसे ही अन्यत्र जान लेना ॥ वह विपर्यय यानी मिथ्या ज्ञान, यह पांच गांठों वाली अविद्या रूप है (यानी पांच प्रकार की अविद्या है) यही अविद्या, अस्मिता, राग द्वेष अभिनिवेश पांच क्लेश हैं ॥ यही अपनी तान्तरिक मोह, महा मोह, तामिस्र अन्ध-तामिस्र नाम वाले हैं, इनको चित्त मल के प्रसंग में कहेंगे ॥ (वेदान्त मत में आत्मा ही एक सत्य अद्वैत अनन्त व्यापक अखण्ड सत् चित् आनन्द रूप है उससे इतर सब कल्पना मात्र अनात्मा असत् विपर्य्यय रूप हैं अथवा विकल्प मात्र हैं)।

मूल:—शब्द ज्ञानानुपाती वस्तु शून्यो विकल्पः ॥ ९ ॥

अर्थ:—शब्द ज्ञान के पीछे होने वाली निर्विषय वृत्ति विशेष विकल्प है ॥ ९ ॥

निर्विषयता में तो विपर्यय और विकल्प की तुल्यता है परन्तु भेद इतना है कि विपर्यय में तो व्यवहार का लोप करने वाला बाध होता है और विकल्प में व्यवहार का लोप न होकर बाध होता है (यह श्रुति प्रमाण है) "विकल्पो नहि वस्तु" "नेह नानास्ति किंचन" ॥

मूल:—अभाव प्रत्ययालम्बनी वृत्ति निंद्रा ॥ १० ॥

अर्थ:—सर्व ज्ञानाभाव के कारण अभाव ज्ञान रूप तम को विषय करने वाली वृत्ति निद्रा हैं ॥ (जिस मत में ज्ञानाभाव निद्रा का लक्षण है उसके निराकरण के वास्ते वृत्ति शब्द कहा)॥

टीका:—वह निद्रा भी जागने पर उसका स्मरण चिन्तन होने से वृति विशेष है॥ वृत्ति विशेष और अवमर्श कैसे होता है इस

का उत्तर कहते हैं।

मन के सत्व में लीन हुए, मैं सुख से सोया मेरा मन प्रसन्न है मेरी प्रज्ञा स्वच्छ हुई है (यह जाग कर स्मरण होता है) ॥ रजो में लीन हुए मैं दुःख से सोया मेरा मन क्रिया के अयोग्य है॥ भ्रमता है स्थित नहीं है॥

तमो में लीन होने पर मैं अत्यन्त मूढ होकर सोया मेरे गात्र भारी हैं, मेरा चित्त ग्लानि युक्त है, आलसी है मानों चोरी गया ऐसे स्थित है॥

निश्चय करके जागे हुए का यदि यह परामर्श न हो तो प्रत्यय के अनुभव के न होने से उस प्रत्यय के अनुभव के आश्रित उसको विषय करने वाली स्मृतियां भी न होंगी तिस कारण निद्राप्रत्यय विशेष है और वह भी समाधि में, इतर प्रत्ययों की न्याईं, निरोध करने योग्य है ॥ १० ॥

मूलः—अनुभूत विषयाऽसम्प्रमोषः स्मृतिः ॥११॥

अर्थः—अनुभूत विषय का अनुसंधान (यानी बिना घटाए बढ़ाए चुराए जैसे का तैसा चिन्तन करना) स्मृति है॥

टीकाः—क्या चित्त, प्रत्यय ज्ञान को स्मरण करता है अथवा विषय को? विषय के समानाकार ज्ञान, विषय और ज्ञान उभयाकार से भान होता है और वैसे ही उभायात्मक संस्कार को आरम्भ करता है॥

वह संस्कार अनुभव के सदृश हुआ तदाकारता को ही अर्थात विषय और ज्ञान उभयात्मक स्मृति को ही उत्पन्न करता है तहां अनुभव और स्मृति दोनों में ज्ञानाकार पूर्वक तो बुद्धि यानी अनुभव होवे है और ज्ञेयाकार पूर्वक स्मृति होती है।

वह स्मृति दो प्रकार की होती हैं कल्पित विषय वाली और यथार्थ विषय वाली॥ स्वप्न में कल्पित विषय वाली और जाग्रत में यथार्थ विषय वाली स्मृति होती है। सर्व स्मृतियां प्रमाण विपर्यय विकल्प, निद्रा और स्मृतियों के अनुभव से होती है॥

यह सब वृत्तियां भी सुख दुःख मोहात्मक हैं अर्थात् सतो, रजो तमो, रूप हैं॥ सुख दुःख मोह का क्लेशों में व्याख्यान करेंगे॥

सुख के अनुसारी राग है, दुःख के अनुसारी द्वेष है मोह पुनः अविद्या रूप है यह सब वृत्तियां निरोध करने योग्य हैं॥

इन रज तम के निरोध से संप्रज्ञात और रज तम सत्व के निरोध से असंप्रज्ञात समाधी होती है॥ ११॥

अब वृत्तियों के लक्षण के कथन के पीछे इन वृत्तियों के विरोध में क्या उपाय है। सो कहते हैं॥

मूलः—अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः॥१२॥

अर्थः—अभ्यास वैरागाभ्यां=मिले हुये अभ्यास वैराग से,। तत निरोधः=वृत्ति का निरोध होता है॥ १२॥

टीकाः—चित्त रूप नदी प्रसिद्ध दोनों ओर वहती है कल्याण की ओर वहती है और पाप रूप अनिष्ट की ओर वहती है। जो चित्त नदी कैवल्य उद्देश वाली है, आत्मा अनात्मा के विवेक रूप विषय की ओर झुकी हुई है सो कल्याण को प्राप्त करने वाली है और जो संसार अर्थात् पुनर्जन्म रूप उद्देश वाली है अविवेक रूप विषय की ओर झुकी हुई है वह अनिष्ट को प्राप्त करने वाली है॥

दोनों वैराग और अभ्यास के मध्य, वैराग से, विषय वाला स्रोत बन्द किया जाता है तथा प्रकृति पुरुष के विवेक दर्शन अभ्यास से विवेक रूप स्रोत खोला जाता है। इस प्रकार वैराग और अभ्यास दोनों के आधीन चित्त वृत्ति का निरोध है॥ (इस लिये ही अभ्यास वैरागाभ्यां यह समास है)॥ १२॥

मूलः—तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः॥ १३॥

अर्थ:—तत्र=दोनों वैराग अभ्यास में से, स्थितौ यत्नः=जो चित्तकी स्थितिके वास्ते यत्न है॥ अभ्यास=सो अभ्यास है॥ १३॥

टीका:—वृत्ति शून्य चित्त की (प्रत्यक परिणाम अर्थात् स्वकारण में लय की ओर) प्रशान्त वाही स्थिति होती है॥ चित्त की प्रशान्त वाही

स्थिति के लिए प्रयत्न और दृढ़ तत्परता उत्साह है ॥ स्थिति के सम्पादन की इच्छा से उन साधनों का अनुष्ठान अभ्यास कहलाता है ॥

मूलः—स तु दीर्घ काल नैरन्तर्य सत्कार सेवितो दृढ भूमिः ॥ १४ ॥

अर्थ :—वह अभ्यास तो दीर्घ काल, निरन्तर सत्कार पूर्वक सेवन किया हुआ, दृढ़ स्थिति वाला यानी पक्का होता है ॥

टीका :—दीर्घ काल यानी जीवन पर्यन्त पूर्णतया सेवन किया हुआ, निरन्तर लगातार सेवन किया हुआ, तप से ब्रह्मचर्य से विद्या से और श्रद्धा से सत्कार पूर्वक सम्पादित हुआ दृढ़ अवस्था वाला होता है, व्युत्थान संस्कार से शीघ्र दवता नहीं है प्रत्युत व्युत्थान संस्कार को दवाता है ॥ १४ ॥

मूलः—दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य, वशीकार संज्ञा वैराग्यं ॥ १५ ॥

अर्थः—दृष्ट जो इस लोक के विषय और सुने यानी वेद से ज्ञात जो स्वर्ग के भोग अथवा अणिमादि जो विषय हैं, इन्हों से तृष्णा रहित चित्त को वशीकार संज्ञा वैराग होता है ॥

टीकाः—स्त्री, अन्न, पान, ऐश्वर्य इन दृष्ट विषयों में तृष्णा रहित को और स्वर्ग प्राप्ति, विदेहता, सिद्धि लाभादि प्रकृति में लीन होना शास्त्र से सुने हुए विषयों में, तृष्णा रहित चित्त को (यानी दिव्य-दिव्य विषयों के संयोग होने पर भी तृष्णा रहित विषय में दोषदर्शी चित्त को) विषयों के दोषों की गिणती रूप प्रसंख्यान के वल से विषयों में भोग से रहित, द्वेष राग से शून्य चित्त को, वशीकार नाम वाला वैराग होता है ॥ १५ ॥

मूलः—तत्परम् पुरुष ख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यम् ॥ १६ ॥

अर्थः—तत् परम्=वह पर वैराग है ।

पुरुष ख्यातेः गुणवैतृष्ण्यम्=जो पुरुष के साक्षात्कार से गुणों में (यानी प्रधान प्रकृति को वश करना इत्यादिक अणिमा आदिक

(सिद्धियों में भी) तृष्णा से रहित होना है ॥ १६ ॥

देखे हुए यानी इस लोक के और सुने हुए यानी परलोक के, विषयों में, दोषदर्शी विरक्त की पुरुष के दर्शन के अभ्यास से उस आत्म दर्शन की शुद्धि रूप प्रविवेक से सिंचित हुई बुद्धि व्यक्ता व्यक्त धर्म वाले गुणों से (यानी ऐश्वर्य से) विरक्त होती है ॥

सो दो प्रकार का वैराग्य है ॥ (यानी वशीकार और पर वैराग) उन दोनों में से, जो पिछला है वह ज्ञान की शुद्धि विशेष है जिसके उदय होने पर विवेक ख्याति के उदय वाला ऐसा मानता है कि पाने योग्य मोक्ष फल पाया, क्षीण करने योग्य क्लेश क्षीण हो गये, जन्म मरण ग्रन्थियां मिली हुई हैं जिसकी ऐसा जो संसार प्रवेश सो छिन्न हो गया, जिसके न छिन्न होने से, जन्म लेकर मरता है और मर कर फिर जन्म लेता है ॥ ज्ञान की परम अवधि पर वैराग है क्यों कि उसके अविना भाव (यानी उससे अभिन्न) कैवल्य पद है ॥ १६ ॥

मूल :— बितर्क विचारानन्दास्मितारूपा नुगमात् संप्रज्ञातः १७

अर्थ :— वितर्क, विचार, आनन्द, और अस्मिता इन चारों रूपों में व्याप्त होने से, संप्रज्ञात समाधि चार पकार की है ॥ १७ ॥

मूलः— विराम प्रत्याभ्यास पूर्वः संस्कार शेषोऽन्यः ॥ १८ ॥

अर्थ :— अन्यः=संप्रज्ञात से अन्य असंप्रज्ञात योग। संस्कार शेषः =(आत्माकार प्रत्यय के) संस्कार मात्र है।

विराम प्रत्ययाभ्यास पूर्वः=निरोध का कारण जो अभ्यास है उससे यानी परवैराग से होता है ॥ १८ ॥ सो यह असंप्रज्ञात रूप निर्बीज समाधी दो प्रकार है सो कहते हैं :—

मूलः— भव प्रत्ययो बिदेह प्रकृति लयानाम् ॥ १९ ॥

अर्थ :— भव प्रत्ययः= अविद्या मूलक असंप्रज्ञात समाधी ॥ विदेह प्रकृति लयानाम=६ कोश वाले जो देव शरीर हैं और प्रकृति में लीन होने वाले जो योगी हैं उन्हों की होती है ॥

मूलः—श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञा पूर्वक इतरेषाम् । २०

अर्थः-इतरेषां=भव प्रत्यय वालों से भिन्न, उपाय प्रत्यय वालों को ॥ श्रद्धा वीर्य, स्मृति समाधि प्रज्ञा पूर्वकः=श्रद्धा, उत्साह, साधनो की स्मृति, समाधि और प्रज्ञा (स्फुटालोकः यानो अपरोक्ष ज्ञान) रूप उपाय हैं पूर्व जिसके, ऐसी, असंप्रज्ञात समाधी होती है ॥ २० ॥

यह लौकिक उपाय कहे :—

टीका :-चित्त की अभिरुचि श्रद्धा है ॥ वह श्रद्धा भी माता की न्याई कल्याण कारी होकर योगी की रक्षा करती है ॥ उस श्रद्धा वान विवेकार्थी के वीर्य यानी उत्साह उपजता है ॥ जिसके सम्यक उत्साह उत्पन्न हुवा है, उस पुरुष के स्मृति दृढ़ स्थित रहती है । स्मृति के दृढ़ होने पर चित्त निश्चल होकर समाधिस्थ यानी एकाग्र हो जाता है ॥ समाहित चित्त वाले पुरुष के शुद्ध बुद्धि में, विवेक की आवृत्ति होती रहतो है जिस से वह योगी यथाभूत वस्तु को जानता है ॥ उसके अभ्यास से और विषयों में वैराग से असंप्रज्ञात समाधि होती है ॥ २० ॥

मूलः—तीव्र संवेगानामासन्नः २१

तीव्र संवेगानाम्= तीव्र वैराग वालों को

आसन्नः=थोड़े काल में ही शीघ्र समाधि लाभ होता है ॥ २१ ॥

मूलः—मृदु मध्याधि मात्रत्वात्ततोपि विशेषः ॥२२॥

अर्थः—मृदु मध्याधि मात्रत्वात्=तीव्र वैराग को, मृदु, मध्य और अधिमात्रा (तथा मिले हुये मृदु, मृदु, मृदु मध्य इत्यादि ९ प्रकार से) होने से अधिमात्र—अधिमात्र—तीव्र संवेग, उपाय वालों को—ततः अपि= आसन्न समाधि लाभ से भी, विशेष=आसन्न तम (यानी अत्यन्त शीघ्र) समाधि लाभ होता है ॥२२॥

अब समाधि लाभ में अलौकिक उपाय को कहते हैं;:—

मूलः—ईश्वर प्रणिधानाद्वा ॥२३॥

अर्थः—वा ईश्वर प्रणिधानात्= अथवा ईश्वर में वाचक कायक, मानसिक भक्ति विशेष से, आसन्न तम समाधि लाभ होता है।

(श्री भगवान् ने गीता में कहा है:—मेरे स्वरूप में मन वाला

हो, मेरा भक्त उपासक हो, मेरा पूजन यज्ञ करने वाला हो, मुझे नमस्कार कर (अर्थात् सब को मेरा आत्म स्वरुप समझ कर नमस्कार कर) मेरे परायण इस प्रकार अपने आत्मा को मुझमें समाहित करके. मुझको ही प्राप्त होगा ।। प्रणव द्वारा ईश्वर का जप वाचक प्रणिधान है वा गुणानुवाद करना वा स्तोत्र पाठ करना वा सत्य हित मित भाषण करना वाचक पणिधान है । ईश्वरार्थ ही शरीर की सब चेष्टा करता हूं। ऐसा समझ कर कर्मों को ईश्वरार्पण करते रहना तथा विहित चेष्टा करना पूर्तिषिध वा सकाम क्रिया न करना, यह कायक पूणिधान है। और मन से सब वासुदेव रूप सत्ता स्फूर्त्ति मात्र सर्वात्मा निर्द्वैत अद्वैत अखण्ड चिन्तन करते रहना मानसिक प्रणिधान है अथवा मौन, आत्म निग्रह, भाव की शुद्धि इत्यादिक मानसी तप पूर्वक ईश्वर का ध्यान मानसिक प्रणिधान है ।। २३ ।।

प्रधान और पुरुष से अतिरिक्त ईश्वर कौन है इस शङ्का का यह समाधान है:—

मूल:—क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः॥

अर्थ:—क्लेश, कर्म, विपाक, आशयैः = अविद्यादिक क्लेश, शुभाशुभ कर्म, कर्मों के सुख दुःख फल और संस्कार इन सबसे ।

अपरामृष्टः=असंवद्ध यानी इनके सम्वन्ध वा स्पर्श से रहित (वद्ध मुक्त और प्रकृति लीन योगियों से भिन्न)। पुरुष विशेषः ईश्वरः =जो पुरुष विशेष है सो ईश्वर है ।।

टीका:—जो इस अत्यन्त सत्व उपादान प्रकृति से यह ईश्वर का सदा का उत्कर्ष है, वह किसी निमित्त को लेकर हैं वा विना निमित्त के है इस शङ्का का उत्तर कहते हैं कि वह ईश्वर रूप पुरुष विशेष का उत्कर्ष शास्त्र निमित्त को लेकर है और शास्त्र किस निमित्त से कहता है सो इसका यह उत्तर है कि अत्यन्त सत्वगुण निमित्त को लेकर कहता है कि जिसका तीनां गुणों की साम्य अवस्था रूप विशेषता से विनिर्मुक्त ऐश्वर्य है, वह ईश्वर है वह ही पुरुष विशेष है, इसी

वार्ता को कहते हैं:—

मूलः—तत्रनिरतिशयं सर्वज्ञ बीजम् ।। २५ ।।

अर्थः—तत्र=उस ईश्वर में ।। निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्=निरतिशय (अर्थात् अत्यन्त) सर्वज्ञ होना वीज है अर्थात् मूल साधक निमित्त है, यानी सर्वज्ञता, निरतिशय होने से, ईश्वर का साधक है।

टीका:—जिसमें ज्ञान की पूर्ण अवधि की प्राप्ति होती है वह सर्वज्ञ है और वह पुरुष विशेष है ।। उसको अपने लिये अनुग्रह की इच्छा की आवश्यकता नहीं भी है परन्तु प्राणियों पर दया की आवश्यकता है कि ज्ञान और धर्म के उपदेश से, कल्प, प्रलय, और महा प्रलय में संसारी पुरुषों का मैं उद्धार करूंगा ।। २५ ।।

मूलः—सएष पूर्वेषामपि गुरुःकालेनानवच्छेदात् ।।२६।।

अर्थः—सएष पूर्वेषां अपि गुरुः=वह यह ईश्वर, हिरण्यगर्भादिकों का भी (यानी जो सर्व से प्रथम सृष्टि करता लोकपालादिक हुए हैं उनका भी) गुरु है, (इसमें हेतु कहते हैं:—)

कालेन अनवच्छेदात्=काल से उसका अन्त न होने से अर्थात् सर्व काल में नित्य एक रस रहने से ।। २६ ।।

मूलः—तस्य वाचकः प्रणवः ।।२७।।

अर्थः—उस ईश्वर का, वाचक प्रणव है ।। २७ ।।

मूलः—तज्जपस्तदर्थ भावनम् ।। २८ ।।

अर्थः—विज्ञात है वाच्य ईश्वर और वाचक प्रणव जिस योगी को उसे कर्तव्य है—तज्जपः=उस प्रणव का जप (वाचक प्रणिधान), तदर्थ भावनं=प्रणव के अर्थ ईश्वर की मन से भावना यानी उसका ध्यान चिन्तन करना (मानस प्रणिधान) (और तीसरा ईश्वरार्थ कर्म जो कायक प्रणिधान) इनसे चित्त एकाग्र हो जावेगा ।।२८।।

टीका:—प्रणव का जप और प्रणव के वाच्य ईश्वर का चिन्तन कर्तव्य है। इस योगी के उस प्रणव का जप करते हुए और अर्थकी भावना करते हुए चित्त एकाग्र होता है। इसीं वात को आचार्य ने कहा है: —

योग शास्त्र के स्वाध्याय से योगका अभ्यास करे और योगाभ्यास करके, पीछे फिर स्वाध्याय करे, स्वाध्याय और योग की सम्पति से यानी दृढ अभ्यास से, परमात्मा का साक्षात्कार होता है॥ (केवल नाम रटन करने से, लाभ अवश्य है परन्तु अर्थ चिन्तन बिना, प्रयास अधूरा रहता है, इस लिए अर्थ चिन्तन के लिए माण्डूक्य उपनिषद का विचार कर्तव्य है)॥

मूलः—ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥२९॥

अर्थः–ततः=उस ईश्वर प्रणिधान से ॥ प्रत्यक् चेतनाधिगमः= अन्तरात्मा चैतन्य का साक्षात्कार॥ च अन्तराय अभावः अपि= और समाधि में जा विघ्न है उनका अभाव भी (होता है)॥ २६ ॥

टीकाः–जो विघ्न प्रथम योगारम्भ काल में होते हैं. व्याधि आलस्यादिक, वे ईश्वर प्रणिधान से नहीं रहने पाते और इस योगी को स्वरूप का दर्शन यानी आत्मा साक्षात्कार भी होता है ॥ जैसा ही ईश्वर पुरुष है, शुद्ध है, स्वच्छ है, केवल है, अनादि है, निरुपाधि है, इसी प्रकार यह वुद्धि का प्रकाशक दृष्टा पुरुष भी, ऐसा ही साक्षात्कार होता है (केवल नाम जप से अथवा ज्ञान श्रवण से भी विना मानसिक प्रणिधानादिक तीनों के अभ्यास के साक्षात्कार नहीं होता)

मूलः—व्याधि, स्त्यान संशय प्रमादालस्याविरति भ्रान्ति दर्शना लब्ध भूमि कत्वानवस्थित्वानि चित्त विक्षे पास्तेऽन्तरायाः ॥३०॥

अर्थः—[१] धातु, रस, तथा इन्द्रियों की विषमता रूप रोग व्याधि [२] स्त्यान अर्थात् चित्त की अकर्मण्यता [३] संशय [४] अनुष्ठान के योग साधनों का न करना [५] कफ के कोप से काया के भारीपन और तमो वृद्धि से चित्त के भारी पन से कार्य्य में अप्रवृत्ति रूप आलस्य [६] विषय त्रष्णा [७] भ्रान्ति दर्शत अर्थात् विपरीत ज्ञान [८] समाधि भूमिका का अलाभ [६] समाधि लाभ की भूमि हुए भी चित्त का न टिकना, यह चित्त के विक्षेप रूप नौ योग के विरोधी विघ्न

कहे जाते हैं ॥ ३१ ॥

इनकी निवृत्ति का उपाय ३२ के सूत्र में आगे कहा है।

सूत्र.- दुःख दौर्मनस्याङ्ग मेजयत्व श्वास प्रश्वासाविक्षेप सहभुवः ॥३१॥

अर्थः—[१] दुःख [२] मन का क्षोभ [३] अङ्गों का कांपना [४] रेचक का विरोधी श्वास, [५] पूरक का विरोधी प्रश्वास पूर्वोक्त विक्षेप के साथ होते हैं।

टीका:—दुःख, अध्यात्मिक, अधि-भौतिक, अधिदैविक भेद से तीन प्रकार का है। जिससे प्राणियों का घात होता है जिस के नाश का प्रयत्न किया जाता है वह दुःख है, दौर्मनस्य, इच्छा के घात होने पर मन का क्षोभ है। यह विक्षेप के साथ रहने वाले विक्षिप्त चित्त के धर्म हैं समाहित चित्त के वे नहीं होते हैं, समाधि के विरोधी हैं, वे अभ्यास वैराग से निरोध करने योग्य हैं॥ इनकी और सब विघ्नों की, निवृत्त्यार्थ अभ्यास के विषय का, उपसंहार करते हुए कहते हैं:—

सूत्र:— तत्प्रतिषेधार्थ मेकतत्वाभ्यासः ॥ ३२ ॥

अर्थः—तत्प्रतिषेधार्थम्=अन्तरायों के निषेध के वास्ते एक तत्वाभ्यासः=एक तत्व का अर्थात् ईश्वर में, ध्यानाभ्यास है

टीका:—विक्षेप की निवृत्ति के वास्ते चित्त के एक तत्व की धारणा का अभ्यास कर्तव्य है॥

(महारामायण में कहा है कि "तब तक रात्री के पिशाचों की न्याईं हृदय में वासनाओं का नृत्य होता है जब तक एक तत्व (परमात्मा के दृढ अभ्यास से मन को नहीं जीता)। इस चित्त के एक तत्व के अभ्यास की स्थिति के लिए चित्त की शुद्धि के उपाय को कहते हैं॥

सूत्र:—मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुख दुःख पुण्या पुण्य विषयाणां भावना तश्चित्त प्रसादः ॥३३॥

अर्थः—सुखियों में मैत्री, दुःखातुर पुरुषों पर करुणा पुण्यवानों

से मुदिता और पापियों से उपेक्षा करने की भावना से चित्त का शोधन होता है ॥ राग, द्वेष, ईर्ष्या, परोपकार करने की इच्छा, असूया और आमर्ष यह कालुष्य निवृत्त होते हैं ॥

टीका:—इस प्रकार इस योगी की भावना से शुक्ल धर्म (पुण्य) उपजता है, उस से चित्त शुद्ध होता है ॥ शुद्ध हुवा चित्त, एकाग्र होकर स्थित अवस्था को प्राप्त होता है ॥

मूलः—प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥३४॥

अर्थः—अथवा प्राण के प्रच्छर्दन यानी रेचक से और साथ ही विधारण अर्थात् बाह्य कुंभक से चित्त की शुद्धि होती है ॥ (इसी लिये नित्य त्रिकाल सन्ध्योपासना का मुख्यांग प्राणायाम नित्य कर्तव्य है द्विजों के वास्ते नियत है न करना पाप है ॥

मूलः—विषयवती वाप्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थिति निबन्धिनी

अर्थः—वा विषयवती प्रवृत्ति उत्पन्ना=अथवा दिव्य विषय के साक्षात्कार वाली सिद्धि उत्पन्न हुई हुई ॥ मनसः स्थिति निबन्धिनी=मन को स्थिति में बांधने वाली है, जैसे इस के, नासाग्र के धारण से जो दिव्य गन्ध साक्षात्कार होता है, सो गन्ध प्रवृत्ति है, ऐसे ही जिव्हा के अग्र में धारण से, दिव्यरस का साक्षात्कार रस संवित् है, तालु की धारणा से रूप संवित् जिव्हा के मध्य में स्पर्श संवित् होती है, और जिव्हा के मूल में धारणा के अभ्यास से शब्द संवित् होती है यानी दिव्य शब्द का साक्षात्कार होता है, सो शब्द प्रवृत्ति है, इन में से कोई भी अभ्यास सफल होने पर, मन स्थित होकर चित्त शुद्ध होता है, योग में श्रद्धा पक्व हो जाती है ॥

मूलः—विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥

अर्थः—अथवा अहङ्कार वा बुद्धि में धारणा से (जैसे सोऽहं शिवोऽहं ब्रह्मैवाहं इत्यादिक धारणा है तद्वत्) जो विशोका ज्योतिष्मति नाम की प्रवृत्ति होती है, उस से मन की स्थिति होती है ॥ (विशोका अर्थात् शोक रहित और ज्योतिष्मति अर्थात् प्रकाशमान ज्ञान वाली ऐसी चित्त की अवस्था विशेष विशोका ज्योतिष्मति प्रवृत्ति है) ॥ ३६ ॥

मूलः— वीतराग विषयं वा चित्तं ॥ ३७ ॥

अर्थः—अथवा वीत राग चित्त में ध्यान धारणा से चित्त स्थिती पद को प्राप्त होता है, (जैनी लोक यानी श्रावकगण, मुनि सिद्ध जिनेन्द्र महावीर आदिक सिद्ध योगियों में धारणा ध्यान करते हैं और कई राज योगी अपने विरक्त गुरु में धारणा ध्यानाभ्यास करते हैं) ॥ ३७ ॥

मूलः— यथाभिमत ध्यानाद्वा ॥ ३८ ॥

अर्थः—अथवा यथेष्ट रूप के ध्यान से, चित्त स्थिति पद को प्राप्त होता है ॥ (कोई योगी लोग सूर्य चन्द्र के प्रकाश में ध्यान करते हैं कोई हृदय कमल पिण्ड आदिक में धारणा करते हैं, कोई श्याम सुन्दर वा देवी आदिक के सगुण रूप का ध्यान करते हैं, इत्यादिक वहुत से धारणा ध्यान के प्रकार हैं, कोई सहस्त्रदल कमल ब्रह्माण्ड में अन्तर ध्यान करते हैं, कोई भ्रकुटि में ज्योति ध्यान करते हैं) ॥

मूलः— स्वप्न निद्रा ज्ञानालम्बनं वा ३९ ॥

अर्थः—अथवा स्वप्न में देखे हुए देवता गुरु आदिक में, वा निद्रा के सुख मात्र में, आलम्वन वाला चित्त स्थित होता है ॥३९॥

मूलः—परमाणु परम महत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ ४० ॥

अर्थः—अस्य=इस योगी के, परमाणु महत्वान्तः=परमाणु से लेकर आकाश पर्यन्त जिस जिस में धारणा का अभ्यास करे । परम-वशीकारः=चित्त की स्वाधीन स्थिति हो जाती है ॥ (यूरूप के आधुनिक विद्वानों ने भौतिक विज्ञान में इसी कारण से अपूर्व ख्याति और स्वार्थ लाभ प्राप्त किया है कि उन्होंने एक एक अणु, दूयणुक से लेकर, प्रकृति के सम्पूर्ण भौतिक तत्वों में सूक्ष्म आकाश, वायु, तेज, जल में विद्यु त के तत्वों में तथा प्रकाश शब्द आकर्षण आक्रमण स्तब्ध द्रवता आदिक शक्तियों में धारणा विचार से, उनमें, वशीकारता प्राप्त करली है) ॥४०॥

मूलः— क्षीणवृत्ते रभिजातस्येवमणेर्ग्रहीतृ ग्रहण ग्राह्येषु तत्स्थ तदञ्जनता समापत्तिः ॥ ४१ ॥

अर्थः—अभिजातस्य इवमणेः=जैसे उत्तम नवीन मणि होती है

ऐसे ॥क्षीण वृत्तेः=क्षीण वृत्ति वाले चित्त की, गृहीत् ग्रहण ग्राह्येषु=गृहिता अर्थात् अस्मिता में शुद्धाहंकार में ग्रहण अर्थात इन्द्रिय ज्ञान में और ग्राह्यों अर्थात् भूत भौतिक स्थूल, सूक्ष्म विषयों में (धारणा से) तत्स्थ= उस उस विषय में स्थित चित्त की, ।

तदं जनता समापत्तिः=उस उस विषय को आकारता रूप समापत्ति अर्थात सम्प्रज्ञात समाधि वाली प्रज्ञा होती है ॥४१॥

मूलः— तत्र शब्दार्थ ज्ञान विकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ॥ ४२ ॥

अर्थः—तत्र=तीनों गृहीता ग्रहण और ग्राह्यों में से ।

शव्दार्थ ज्ञान विकल्पैः संकीर्णा=शव्द विकल्प अर्थ विकल्प और ज्ञान विकल्पों के साथ मिली हुई ॥ सवितर्को समापत्तिः= सवितर्क समाधि प्रज्ञा होती है ॥ (जैसे गो शव्द गो अर्थ और गो ज्ञान इन तीनों विकल्पों सहित गो में, धारणा ध्यान से, जो गो वाली समाधि प्रज्ञा होती है, वह सवितर्क है) ॥ ४२ ॥

मूलः— स्मृति परिशुद्धौ स्वरूप शून्येवार्थ मात्र निर्भासा निर्वितर्का ॥ ४३ ॥

अर्थः—स्मृत्ति परिशुद्धौ=शव्द के संकेत की स्मृति के, निवृत्त होने पर । स्वरूप शून्य इवं=ग्रहणात्मक प्रत्यय रूप यानी विषय के ज्ञानरूप और ध्याता जो अहंकार इन दोनों से रहित शून्यवत् ॥ अर्थ मात्र निर्भासा=केवल ध्येयाकार मात्र रूप से भासमान निर्वितर्का=निर्वितर्का नाम वाली समाधि होती है ॥ ४३ ॥

मूलः—एतयैव सविचारा च सूक्ष्म विषयाव्याख्याता ॥ ४४ ॥

अर्थः—एतया एव=इस सवितर्क निर्वितर्क के निरूपण से ही ॥ सूक्ष्म विषया सविचारा निर्विचारा च व्याख्याता=सूक्ष्म वस्तु को विषय करने वाली सविचारा निर्विचारा समापत्ति भी कही है ॥

मूलः—सूक्ष्म विषयत्वं चालिङ्ग पर्यवसानम् ॥ ४५ ॥

अर्थः—सूक्ष्म विषयता भी शब्दादिक तन्मात्रा से लेकर प्रधान पर्यन्त है ॥ ४५ ॥

मूलः— ता एव सबीजः समाधिः ॥ ४६॥

अर्थः—वे सवितर्कादि चार प्रकार की बाह्य वस्तु को आलंबन करने वाली सबीज समाधि हैं ॥ ४६ ॥

मूलः— निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्म प्रसादः ॥ ४७ ॥

अर्थः—निर्विचार समापत्ति की स्वच्छता से अध्यात्म प्रसाद होता है, अर्थात् भूतों से प्रधान पर्यन्त सब का युगपत् काल में ग्रहण होता है। (अध्यात्म विचार द्वारा बुद्धि स्वच्छ और एकाग्र होने से आत्म ज्ञान होता है; जिस एक आत्मा के जानने से सब, आत्मा ब्रह्म रूप से जाना जाता है कि सब का आत्मा सब रूप एक अद्वितीय अखण्ड ब्रह्म ही है; यही तात्विक अध्यात्म प्रसाद है जो उपनिषद का मत है अन्यथा अपनी भावना के अनुसार अपनी अपनी सृष्टि का सब को अपने अपने काल में युगपत ग्रहण हो ही रहा है, चित्त की एकाग्रता से बुद्धि तीक्ष्ण होकर और अधिक सूक्ष्म भौतिक विज्ञान हो जावेगा)।

टीकाः—अशुद्धि जो आवरण मल और विक्षेप हैं, यानी जो अज्ञान और पाप का तम और रजोकुणात्मक चित की चञ्चलता या दुःख है उन दोषों से रहित, योगी के प्रकाश स्वरूप बुद्धि सत्व को रज तम से न दबने वाली, स्वच्छ स्थिति का प्रवाह, जो वैशारद्य है सो होता है ॥ जब निर्विचार शुद्ध अहमादि सूक्ष्म तत्वों में धारणा ध्यान के अभ्यास से समाधि में यह वैशारद्य रूप कौशल उत्पन्न होता है, तब योगी के अध्यात्म प्रसाद होता है अर्थात् चित्त की सम्यक शुद्धि के प्रभाव से सूक्ष्म तत्वों का यथाभूत सत्य अर्थ को विषय करने वाला और क्रम के विरोध से रहित यानी क्रम के अनुसारी, स्पष्ट साक्षात्कार होता है जिसको प्रज्ञा लोक कहते हैं। इसी बात को आचार्य ने कहा है:— प्रज्ञा के प्रसाद यानी बुद्धि की स्वच्छता पर आरूढ होकर आप शोक रति हुवा २ सामर्थ्य हीन दीन जनों पर ऐसे शोक करता है, जैसे कोई बुद्धिमान, पहाड़ की चोटी पर चढ़ कर भूमि पर स्थित सब वस्तुओं

परुषां को उपर से देखता है ॥ ४७ ॥

मूलः--ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा ॥ ४८ ॥

अर्थः—तत्र=उस अध्यात्म प्रसाद के होने पर। ऋतंभरा प्रज्ञा =ऋतंभरा प्रज्ञा होती है, अर्थात् सत्य अर्थ की प्रकाशने वाली प्रज्ञा उदय होती है।

टीकाः—उस समाहित चित्त पुरुष के जो प्रज्ञा उत्पन्न होती है उसका नाम ऋतंभरा है॥ अन्य का विषय करने वाली भी वह प्रज्ञा, सत्य को ही धारण पोषण करती हैं उसमें विपर्यय ज्ञान की गन्ध भी नहीं होती हैं इसी बात को आचार्यों ने कहा है:-

(ज्ञान योग शास्त्र के) श्रवण से, युक्ति अनुमान द्वारा तर्करूपी मनन से और ध्यानअभ्यास के रस रूप निदिध्यासन से तीन प्रकार की प्रज्ञा का साधन करता हुआ, उत्तम योग को पाता है ॥ ४८ ॥

मूलः—श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्य विषया विशेषार्थत्वात्॥

अर्थः-श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यां=श्रुत अर्थात् शास्त्रीय आगम प्रज्ञा यानी सुने ज्ञान से, अनुमान प्रज्ञा यानी तर्क विचार से॥

अन्य विषयाः-यह ऋतंभरा प्रज्ञा अन्य विषय वाली है॥

विशेषार्थत्वात्=विशेष अर्थों को विषय करने वाली होने से॥ सूक्ष्म नेडे और दूर के जो सूक्ष्म भूतों के शक्ति सामर्थ्य वाले और पुरुष गत भावना मय, विषय हैं, उनके सामान्य स्थूलांशों कों छोड़ कर जो सूक्ष्म रहस्य मय दुर्गम विशेषांश हैं, सो वे ऋतंभरा प्रज्ञा का विषय है, जैसे मनुष्यों के हार्दिक भावों की पहिचान, मुख की आकृति मात्र से उनके स्वभाव की पहिचान होनी, भावना से कार्यों की सिद्धियां और आकाश वायु, तेज, जल, पृथ्वी, विद्युत इत्यादिक तत्वों के गुह्य सामर्थ्यों को जान कर उनसे आकाश गमन जल मग्नता विद्युत प्रकाश कला कौशलादि कार्यों की प्रगटता दिव्यलोकों के रहस्य जाने जाते हैं और निष्कामता के उदय हुए हुये आत्मसाक्षात्कार होना यह सब ऋतंभरा प्रज्ञा का विषय है क्यों कि चित्त की एकाग्रता और सूक्ष्म तत्त्वों का

अभ्यास सिद्ध होने पर भी विना वैराग के और ज्ञानाभ्यास के आत्म साक्षात्कार अत्यन्त दुर्लभ देखा गया है।

(सिद्धियों के प्राप्त होने पर भी आत्म ज्ञान नहीं होता और आत्म ज्ञानी के लिए भी सिद्धियों का होना आवश्यक नहीं क्यों कि विषय भिन्न २ है ॥ ४६ ॥

मूलः—तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कार प्रतिवन्धी ॥ ५० ॥

अर्थः—तज्जः संस्कारः=ऋतंभरा प्रज्ञा से उत्पन्न हुए संस्कार। अन्य संस्कार प्रतिबंधी=व्युत्थान संस्कार के रोकने वाले हैं ॥

टीकाः—समाधि प्रज्ञा से उत्पन्न हुए संस्कार, व्युत्थान संस्कार समूह के बाधक हैं यानी घातक हैं ॥ व्युत्थान संस्कारों के दब जाने से उससे उत्पन्न हुए जो वृत्ति ज्ञान हैं वे नहीं होते हैं ॥ वृत्तियों के निरोध होने से समाधि में उपस्थिती हो जाती है। उससे समाधि जन्य प्रज्ञा और उस प्रज्ञा के संसाकार होते हैं। उससे सजातीय नवीन संसकारों का समुदाय उत्पन्न होता है। उससे प्रज्ञा और उससे फिर संस्कार होना ऐसा प्रवाह चलता रहता है ॥ इस वास्ते प्रज्ञा अर्थात् शुद्ध बुद्धि जन्य संस्कार क्लेश के नाश में कारण होने से, चित्त को अधिकार संपन्न वनाते हैं, वे चित्त को अपने कार्य से शिथिल वना देते हैं क्यों कि चित्त की चेष्टा तव तक ही होतो रहती है जव तक विवेक ख्याति का उदय नहीं हुआ॥५॥

मूलः—तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ५१

अर्थः—तस्यापि निरोधे=उस ऋतंभरा प्रज्ञा और उसके संस्कारों के निरोध होने पर ॥ सर्व निरोधात्=सवका निरोध होने पर ॥ निर्बीजः समाधिः=निर्बीज समाधि होती है ॥

टीकाः—निरोध में स्थिति काल के अनुभव से, निरुद्ध चित्त के संस्कारों की विद्यमानता का अनुमान होता है ॥ व्युत्थान के संस्कार, निरोध समाधि से उत्पन्न हुए संस्कार और जो कैवल्य दायक संस्कार हैं, उन सब के साथ चित्त अपनी कारण प्रकृति में स्थित हुआ, अत्यन्त ही

लीन हो जाता है (पुनर्जन्म के योग्य नहीं रहता, जल तरङ्गवत् कार्य चित्त का अपने कारण रूप प्रकृति में लय हो जाता है) इस लिये वे समाधि-प्रज्ञा-जन्य-संस्कार, चित्तके अधिकार के विरोधी हैं, चित्तको स्थिति के हेतु नहीं रहते हैं ॥ जिस वास्ते कि संसारभाग की समाप्ति वाला चित्त, अपने कैवल्य भागी संस्कारों के सहित अत्यन्त निवृत्त हो जाता है, उसके निवृत्त हाने से पुरुष अपने स्वरूप में स्थित होता है, इस लिए वह (चित्तरहित) पुरुष शुद्ध मुक्त कहलाता है ॥ ५१ ॥

यह समाधि पाद, उत्तमाधिकारी, समाहित चित्तके भाग्य वाले पुरुष के लिये कहा है ॥ आगे के अध्याय में विक्षिप्त चित्त वाले मन्द अधिकारो के वास्ते समाधि के लिये उपाय जो क्रिया योग है, उसका कथन करेंगे ॥

विना चित्त की एकाग्रता द्वारा अन्तः करण के शुद्ध हुए, न तो यह लोक ही सिद्ध होता है और न परलोक, फिर मोक्ष तो दूर है, इस लिये भोग मोक्ष रूप पुरुषार्थ के सिद्ध के लिए, प्रत्येक नरनारी को योगाभ्यास कर्त्तव्य हैं ॥

इस समाधि पाद में प्रथम सूत्र में मंगलाचरण पूर्वक पूर्व आचार्यों से उपदिष्ट, योग शास्त्र को आरम्भ करने की प्रतिज्ञा की ॥ दूसरे सूत्र में योग किसको कहते हैं यह निरूपण किया ॥ तोसरे सूत्र में समाधि में स्वरूपावस्थान कहा जो कैवल्य मोक्ष है ॥ चतुर्थ सूत्र में व्युत्थान कालीन वृत्ति की समानाकारता का, आत्मा में आरोप होना निरूपण किया ॥ पंचम सूत्र से ११ सूत्र तक वृत्तियों के भेद और उनके स्वरूप का निरूपण किया ॥ बारहवें सूत्र में वृत्तियों के निरोध का मुख्य उपाय अभ्यास युक्त वैराग कहा ॥ तेरहवें सूत्र में अभ्यास का स्वरूप वर्णन करके चौदहवें सूत्र में उसके दीर्घ कालीन कर्तव्यता का उपदेश किया ॥ १५ तथा १६ के सूत्रों में वैराग के स्वरूप का निरूपण किया ॥ सत्रहवें सूत्र में संप्रज्ञात समाधि कही और अठारहवें के सूत्र से लेकर ३२ सूत्र तक संप्रज्ञात समाधि और उसके अभ्यास का निरूपण किया तथा समाधि के विघ्नों की निवृत्ति का निरूपण किया ॥ ३६ से ४० वें सूत्र

तक चित्त की शुद्धि के उपायों का और चित्त की एकाग्रता के लिये अपेक्षित प्राणायाम ध्यानादिक अभ्यासों को कहा ॥ ४१ के सूत्र से ४६ के सूत्र तक संप्रज्ञात समाधि के भिन्न २ प्रकार के अभ्यासों का निरूपण करके उनको सबीज समाधि कहा। ४७ सूत्र से ५० के सूत्र तक निर्विचार संप्रज्ञात समाधि के अभ्यास से अध्यात्म प्रसाद और ऋतंभरा प्रज्ञा का निरूपण किया और व्युत्थान संस्कारों का निरोध रूप फल कहा ॥ अंत के ५१ के सूत्र में उसके संस्कारों के भी निरोध से सर्व वृत्तियों के निरोध पूर्वक निर्वीज समाधि रूप कैवल्य पद का उपदेश किया ॥ जो लोग यह समझते हैं कि योगाभ्यास केवल बनवासी तपस्वी ब्रह्मचारी सन्यासी का ही धर्म है वे भूल करते हैं, हिरण्यगर्भ से लेकर सूर्यमनु इक्ष्वाकु, राम कृष्ण पातञ्जल व्यास वशिष्ठ सब गृहस्थ ही योग के आचार्य हुये हैं और त्रिकालसंध्या उपासना रूप विधी विधान योगाभ्यास का ही आरंभ है और दीर्घ काल पश्चात् उसी से पूर्णता होने की आशा है ॥ इस त्रिकाल संध्या उपासना के छूटने से वा श्रद्धा रहित कभी कभी या दो वार कर लेने मात्र से ही द्विजों का पराक्रम तेज बुद्धि ज्ञान नष्ट होकर, वे सब प्रायः शूद्र संज्ञा को प्राप्त होगये और आलसी बनगये ॥ यदि श्री कृष्ण लीला की गम्भीर, स्वच्छ, भगवत् प्रेम की उत्पादक भावना को न ग्रहण करके चित्त कामासक्ति और विलासिता से पूर्ण होता हो तो अपना विनाश समझ कर, उसको तुरन्त छोड़दो और केवल योग का आश्रय लो ॥ ऐसा न होता तो स्वयं श्री कृष्ण भगवान् श्रीमद्भगवत् गीता योग शास्त्र में मुख्यतः योगाभ्यास पूर्वक ही भक्ति ज्ञान का क्यों निरूपण करते और प्रणव द्वारा अपने ध्यान का क्यों आदेश करते या अपने विराट रूप अथवा चतुर्भुजी स्वरूप का क्यों कथन करते अथवा "वासुदेव सर्वमिती सदसच्चाहं" क्यों कहते ॥

वैराग बिना, अभ्यास नहीं हो सकता और अभ्यास बिना, चित्त एकाग्र नहीं हो सकता, इस लिए दोनों साथ ही साथ आवश्यक हैं ॥ परमात्मा में ही सब कुछ एकत्र हैं, क्यों कि उसी से सब कुछ हुआ

उसी में दृष्ट आरहा है, अविद्या से उल्टा दृष्ट आता है, विद्या द्वारा उसके निवृत्त होने से यथावत् दृष्ट आता है इस लिये प्रथम विद्या यानी सत्य ज्ञान से, असत्य अविद्या निवृत्त होगी, और वह आत्मा का ही ज्ञान होगा शेष अनात्मा है असत्य है ॥ आत्मा ज्ञान–स्वरूप है अनन्त है शुद्ध है केवल है इस लिये उसके ही ध्यानाभ्यास से उसकी प्राप्ति निश्चय जानों और उसके प्राप्त होजाने से उससे अधिक सुख या प्रेम का विषय पाने के लिए क्या शेष रह गया, यदि फिर भी कुछ इच्छा रहे तो वह ईश्वर ही की इच्छा है, इस लिए उसमें कौन बाधक हो सकता है ? अभ्यासी के अभ्यास के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह सम्पूर्ण योग शास्त्र में लिखे हुये अभ्यासों के अनुष्ठान को सिद्ध करके तुरन्त सिद्ध बन जावे और लोगों को सिद्धाई दिखाता फिरे, तात्पर्य इस सब निरूपण का यह है कि अधिकार के अनुसार जो विषय इष्ट हो उसको स्वीकार कर के चित्त एकाग्र करे जिससे श्रद्धा उत्पन्न हो कर सिद्धि रूप विघ्नों से बचता हुआ परम लक्ष्य परमात्मा को पाकर सब दुःखों से सदा को छूटे ॥ यदि सकाम उपासक योगी भी हो तो भी लौकिक विज्ञानों पर प्रभुता हस्तगत होगी जैसे विदेशी पाश्चात्य विद्वान परीक्षागार में एकाग्रता पूर्वक विचाराभ्यास से लौकिक विज्ञान से कुशल होते हैं, यह भी योग है ॥

॥ इति प्रथमः समाधि पादः ॥

---

* श्री मङ्गल मूर्त्तये नमः *

श्री पातञ्जल योग दर्शनं द्वितीयः साधन पादः

प्रथम समाधि पाद में समाहित चित्त योगी को उपदेश किया

परन्तु व्युत्थित चित्त योगी कैसे योग युक्त होवे इसका उपाय वर्णन करने को इस पाद का आरम्भ करते हैं :—

मूलः—तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः ॥१॥

तप स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान, क्रिया योग है ॥

टीकाः—प्रणवादि पवित्र मन्त्रों का जप अथवा मोक्ष शास्त्रों का अध्ययन (जैसे उपनिषद् शास्त्र, योग शास्त्र, भगवद्गीता, महारामायण आदिक मोक्ष प्रतिपादक शास्त्रों का अध्ययन है ऐसे सत् शास्त्रों का अध्ययन विचार नित्य पाठ) स्वाध्याय है, हित मित् मेध्य भोजन और द्वन्द्व सहन सहित इन्द्रियों का निरोध, तप कहलाता है ॥

वाचक, कायक, व मानसिक सब क्रिया का ईश्वर समर्पण, ईश्वर प्रणिधान है, सो प्रथम पाद में कह चुके हैं ॥ १ ॥ यह जो क्रिया योग कहा है इसका प्रयोजन कहते हैं:—

मूलः—समाधि भावनार्थः क्लेश तनू करणार्थश्च ॥ २ ॥

अर्थ—क्रिया,-योग, समाधि भावना की प्राप्ति के वास्ते है और क्लेशों के नाशोन्मुख करने के लिये है ॥ २ ॥

मूलः अविद्याऽस्मिता रागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥ ३ ॥

अर्थः—अविद्या, अस्मिता राग, द्वेष, अविनिवेष, क्लेश हैं ॥

टीकाः—क्लेश यह पंच विपर्यय हैं ॥ वे क्लेश, वर्तमान हुये २ गुणाधिकार (संसार) को दृढ़ करते हैं परिणाम (दुःख) को स्थापन करते हैं, उस कार्य कारण (जन्म-मरण उत्पत्ति नाशादि) प्रवाह को खोलते हैं परस्पर एक दूसरे के उपकार के आधीन होकर कर्म फल भोग को सब ओर से निरन्तर प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

मूलः अविद्या क्षेत्र मुत्तरेषां प्रसुप्त तनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥४॥

अर्थः—प्रसुप्त तनु विच्छिन्नो दाराणाम्=प्रसुप्त (प्रकृति-लीनयोगी) तनु (क्रिया योगी) विच्छिन्न (क्लेशों के पृथक् २ भोग वाले) और उदार (विषयी) जनों के, चार अवस्था वाले, इन ॥ उत्तरेषां=पीछे के अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेष इन चार क्लेशों की ॥ क्षेत्रं=जनने वाली प्रसव

भूमि ।। अविद्या=अविद्या है (इस लिये अविद्या सब क्लेशों का वाचक जानो ।।)

टीका:—इस प्रकार अविद्या न प्रमाण रूप है और न प्रमाण का अभाव रूप है ।। विद्या से विपरीत भिन्न प्रकार का ज्ञान, अविद्या है

प्रसुप्ति क्या है ? उत्तर यह है कि, चित्त में शक्ति मात्र को लेकर स्थित, कारण रूप से, बीज भावों का रहना, प्रसुप्ति है ।। दग्ध हुए बीज का न उगना तनुत्व कहलाता है, विरोधी भावना से उपमर्दित क्लेश तनु हो जाते हैं ।। जो अलग अलग से, तिस तिस रूप से पुनः पुनः, क्लेश प्रगट होते हैं वे विच्छिन्न कहलाते हैं, जैसे राग काल में क्रोध का अदर्शन होता हैं, परन्तु वही राग प्रतिबद्ध हुवा फिर क्रोध रुप से आजाता है, ऐसे ही सव जान लेना, ।। अब ही जो विषय, भोग देने को विद्यमान हो वह उदार कहलाता है ।। ४ ।।

मूलः—अनित्याशुचि दुःखानात्मसु नित्य शुचि सुखात्म ख्यातिरविद्या ।। ५ ।।

अर्थः—अन्य में अन्य की बुद्धि रुप विपर्यय ज्ञान वासना, जो अनित्य देवता आदिकों में अमृतत्व की बुद्धि, अशुचि स्त्री, पुत्र, स्वदेहादिक में शुचि पने की वुद्धि, दुःख रुप विषयों में सुख वुद्धि और अनात्म देह रुप पंच कोशादिकों में आत्म वुद्धि, सो अविद्या हैं ।।

टीकाः—काम का अशुचि स्थान होने से, वीज से यानी कारण से अशुचि होने से, आश्रय देहादिक अशुचि होने से, निकल कर, अशुचि हृदय होने, और विनाश होकर भी अशुचि होने से, कामको शौच रहित होने से, पंडित उसको अशुचि जानते हैं, इस प्रकार कामके विषय स्त्रिपुत्रादिकों में, अशुचि में शुचि वुद्धि देखी जाती हैं ।। नवीन चन्द्र की रेखा के समान सुन्दर यह कन्या जिस के मधुर अमृतसमान अङ्ग हैं मानो चन्द्र मण्डल को तोड़ कर निकली है ऐसी ज्ञात होती है, इस प्रकार इस में किस को किस कारण से अभिलाषा होती हैं ? इस प्रकार अशुचि में शुचि पने का विपर्यय ज्ञान होता है ।। ५ ।।

मूलः—दृग्दर्शन शक्त्यो रेकात्मतैवास्मिता ॥ ६ ॥

अर्थः—दृग, दर्शन शक्तयोः एकात्मता एवअस्मिता=दृग शक्ति अर्थात् पुरुष और दर्शन शक्ति अर्थात बुद्धि इन दोनों के मिलने से एकात्मता की न्याई, क्लेश रूप अस्मिता है ॥ (इसी को पूर्व वृत्तिसारूप्यता के नाम से कहा है और वेदान्त शास्त्रों में अन्योन्य अध्यास के नाम से कहते हैं) ॥ अत्यन्त भिन्न पुरुष और बुद्धि के माने हुये संकीर्ण एकत्व भाव से ही भोग की कल्पना होती है कि मैं भोक्ता हूँ ॥

टीकाः—पुरुष में बुद्धि के अवस्थान से तो मोक्ष होता है तब तो यह अस्मिता भी क्लेश भोग रूप न हुई कैवल्य रूप ही है इस शङ्का का यह समाधान है जैसा कि आचार्य ने कहा हैः—बुद्धि में, परम पुरुष, आकार, शील विद्या आदि विशेषणों के कारण अत्यन्त भिन्न है, विना प्रसंख्यान विवेक ख्याति के शुद्ध चिति पुरुष में अशुद्ध बुद्धि की स्थिति और समानता नहीं हो सकती है इस लिये अस्मिता मिथ्या भोगाभिमानी क्लेश रूप है ॥ ६ ॥

मूलः—सुखानुशयी रागः ॥ ७ ॥

अर्थः—सुख के अनुसारी होने वाला प्रत्यय (ज्ञान) विशेष, राग है ॥ सुख की स्मृति पूर्वक सुख और उसके साधनों में जो त्रष्णा लोभ है सो राग है ॥ ७ ॥

मूलः—दुःखानुशयी द्वेषः ॥ ८ ॥

अर्थ—दुःख को अनुसरण करने वाला प्रत्यय विशेष, द्वेष है ॥ दुःख के जानने वाले दुःख की अनुस्मृति पूर्वक जो दुःख और दुःख के साधनों में क्रोध है सो द्वेष है ॥ ८ ॥

मूलः—स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढोऽभिनिवेशः ॥९॥

स्वरसवाही=स्वभाविक ही, विदुषः अपि=विद्वान के भी (तथा, रूढः अभिनिवेशः=) तैसे ही (कृमिवत) आरूढ, जो मरण त्रास है सो अभिनिवेश है ॥ मरण के भय को अभिनिवेश कहते हैं सो सब जीवों में समान है ॥

मूलः – ते प्रतिप्रसव हेयाः सूक्ष्माः ॥ १० ॥

अर्थः—ते सूक्ष्माः=वे समाप्ताधिकार योगी के दग्धवीज के सदृश सूक्ष्म क्लेश, जो अति सूक्ष्म वासना रूप हैं सो॥ प्रतिप्रसव हेयाः =चित्त के अपने कारण प्रकृति में विलय रूप परिणाम द्वारा, हेय हैं, अर्थात् उसके साथ ही अस्त हो जाते हैं॥

टीकाः—तात्पर्य यह है कि जैसे वस्त्र का स्थूल मल प्रक्षालन से, और सूक्ष्म मल सज्जो आदि द्वार से निवृत्त होते हैं परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म मल वस्त्र के दग्ध होने से ही निवृत्त होता है, इसी प्रकार स्थूल वृत्ति रूप मल क्रिया योग से और उससे सूक्ष्म मल प्रसंख्यान से हातव्य है॥ परन्तु अति सूक्ष्म मल केवल चित्त के प्रलीन हुए निवृत्त होंगे इसी बात को कहते हैं कि: -

मूलः—ध्यान हेयास्तद् वृत्तयः ॥ ११ ॥

अर्थः—तद्वृत्तयः=क्लेशों की स्थूल से सूक्ष्म अवस्था रूप हुई वृत्तियां ध्यान हेयाः=ध्यान से निवृत्त होती हैं॥

टीकाः—बीज भाव को यानी कारण संस्कार रूप को प्रप्त होकर स्थित, जो स्थूल वृत्तियां हैं वे क्रिया योग से सूक्ष्म हुई हुई प्रसंख्यान रूप ध्यान से तव तक हातव्य हैं जब तक वे सूक्ष्म हो जावें और दग्ध बीज के सदृश हो जावें॥

मूलः-क्लेश मूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्म वेदनीयः॥१२॥

अर्थः—कर्म राशी क्लेश मूलक है, इसी शरीर में फल देने वाला है अथवा जन्मान्तर में फल देता है॥

टीकाः—वारम्बार तीव्र, क्लेश से भय भीत जन का, या व्याधि ग्रस्त का यानी रोगी का, या किसी कृपण का पुनः पुनः अपकार करने से तुरन्त फल होता है, अथवा किसी के साथ विश्वासघात करने से या वारम्बार महानुभाव तपस्वी जनों का अकारण अपकार करने से भी, पाप कर्माशय तुरन्त अनिष्ट फल देता है, तद्वत पुण्य कर्मों का भी फल जान लेना॥

मूलः—सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगः ॥ १३ ॥

अर्थः—सति मूले=क्लेश रुप मूल के विद्यमान हुए ॥ तद्विपाकः =उस कर्म राशी का फल ॥ जात्यायुर्भोगः=जाति, आयु और भोग होता हैं ॥

टीकाः—जाति एक कर्म का फल है, आयु एक कर्म का फल है, भोग अनन्त कर्मों का फल होने से मुख्य है और जन्म देने में हेतु हैं ॥ (व्यास भगवान के कथनानुसार जाति एक कर्म का फल है इसी लिये वर्ण धर्म स्थिर रखने के लिये जाति के रक्त की शुद्धि रखने को और जाति की उन्नति के वास्ते ब्राह्मण जाति आदिकों को स्व स्वधर्म पालना उचित है ॥

मूलः—तेह्लाद परितापफलाः पुण्यापुण्य हेतुत्वात् ॥१४॥

अर्थः—(अविवेकी के वास्ते) ते=वे जाति आयु और भोग ॥ ह्लाद परिताप फलाः=हर्ष और परिताप फल वाले होते हैं ॥ पुण्यापुण्य हेतु-त्वात्=पुण्य और पाप निमित्त वाले होने से ॥ तात्पर्य यह है कि पुण्य हेतुक जाति आयु भोग सुख रूप फल देने वाला है, अपुण्य जिनका हेतु है ऐसे जो जाति आयु भोग हैं वे दुःखफल देने वाले हैं ॥ (वर्णा-श्रम धर्म इसी लिए पाप नाशक पुण्यकारी होने से रक्षणीय हैं) अब कहते हैं कि विवेकी को तो सर्वदा सब ही दुःख रूप हैं ॥

मूलः—परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुण वृत्तिविरोधाच्च दुःख मेव सर्वं विवेकिनः ॥ १५ ॥

अर्थः—विवेकिनः=विवेकी को, अर्थात् संसार के यथावत् स्वरूप के देखने वाले पुरुष के लिये (न कि आत्मस्वरूप दर्शी को) सर्वं दुःखं एव=(संसर्ग से भी और स्वरूप से भी) सब दुःख ही है ॥ सुख का गन्ध भी नहीं है यह "एव" शब्द से कहा है ॥ परिणाम ताप संस्कार दुखैः=परस्पर मिले हुए पाप जन्य, जन्म मरणात्मक सांसर्गिक, जो परिणाम दुःख और साधनाभाव रूपा व लोभादि होने से ताप दुःख, तथा सजातीय संस्कारों के प्रवाह रूप जो संस्कार दुःख इन सभों करके ॥ च गुण वृत्ति विरोधात्=और त्रिगुणात्मक वृत्तियों के परस्पर वद्ध घातक

स्वभाव होने से, सब दुःख ही है ॥

टीका:-जो भोगों में तृप्त होने से इन्द्रियों की उपशान्ति है सो सुख है और जो चंचलता से अनुपशान्ति है सो दुःख है ॥ जैसे मकड़ी का जाला नेत्र में पड़ कर दुःख देता है, परन्तु अपने स्पर्श से अन्य शरीर के अवयवों पर पड़ कर दुःख नहीं देता इसी प्रकार यह सब दुःख आंख की पुतली के सदृश कोमल हृदय वाले योगी को ही क्लेश देते हैं अन्यों को दुःख नहीं देते, जो भोगी संसारी हैं उनको क्लेशित नहीं करते हैं (यह क्लेश वैराग्य जन्य है वड़े पुण्य कर्मों का फल है पापों का फल नहीं है) ॥ इस महान दुःख के समुदाय की उत्पत्ति का बीज कारण अविद्या और उसके अभाव का हेतु सम्यक् दर्शन है ॥ (पूर्वोक्त कारण से महान ऋद्धि सिद्धि सम्पन्न महर्षयों राजऋषियों ब्रह्मऋषियों सम्राट आदिकों ने भी त्याग पूर्वक योगज्ञान का ही आश्रय लिया ॥) यह योग शास्त्र चतुर्व्यूह है:—(१) दुःख वाहुल्य वाला संसार हेय है। (२) प्रधान और पुरुष का जो संयोग है सो हेय रूप जो अनागत दुःख संसार है उसका कारण है (३) संयोग की अत्यन्त निवृत्ति,हान है अर्थात् मोक्ष है (४) सम्यक् दर्शन, हान का अर्थात् संसार की निवृत्ति रूप कैवल्य मोक्ष का उपाय है ॥ इनमें से प्रथम हेय को कहते हैं ॥

मूलः—हेयं दुःख मनागतम् ॥ १६ ॥

अर्थः—अनागत् अर्थात् जो दुःख अभी नहीं आया वह दुःख हेय है ॥

टीका:—जो व्यतीत हो गया सो हो गया जो वर्तमान है सो अनिवार्य है शेष जो आने वाला शिर पर है उसकी ही निवृत्ति का उपाय हो सकता है ॥

मूलः--दृष्टृ दृश्योः संयोगो हेय हेतुः ॥ १७ ॥

अर्थ -जो पुरुष और बुद्धि का संयोग है सो हेय यानी अनागत दुःख रुप संसार का कारण है ॥

टीका:-द्रष्टा,वुद्धि के समानाकार स्फुरणवाला ज्ञाता पुरुष है, और दृश्य रूप बुद्धि सत्वमें उपारूढ सब धर्म हैं ॥ सो यह दृश्य, चुम्बक मणि के

सदृश है दृश्य होकर स्वयं चैतन्य रूप स्वामी पुरुष का उपकारी (भोगप्रद) होता है ॥ ज्ञान और कर्म की विषयता को प्राप्त हुआ अन्य (करता भोक्ता) विपरीत स्वरूप से प्रतिलब्ध (बुद्धि के समान भान) होने वाला, स्वरूप से स्वतन्त्र होते हुये भी परार्थ होने से, अर्थात बुद्धि के वास्ते परतन्त्र ऐसा जो दृष्टा है; उस का जो दर्शन शक्ति यानी बुद्धि के साथ, अनादि सार्थक किया हुआ संयोग है, सो संयोग, हैय का हेतु अर्थात दुःख का कारण है ॥

मूलः — प्रकाश क्रिया स्थिती शीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगा-
पवर्गार्थं दृश्यं ॥ १८ ॥

अर्थः—दृश्यंभूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थम्=दृश्य स्थूल सूक्ष्म भूत और एकादश इन्द्रिय स्वरूप है भोग के अर्थ है और (सम्यग्दर्शन होने पर) अपवर्गार्थ अर्थात् मोक्ष के वास्ते है ॥ प्रकाश क्रिया स्थिती शीलं=प्रकाश यानी सत्व,तथा क्रिया अर्थात रज, और स्थिती अर्थात् (रज सत्व जो क्रिया और प्रकाश हैं उनके निरोध रूप) तम, इन तीन गुणों वाला है, यह त्रिगुणात्मक शील यानी स्वभाव हैं जिसका, ऐसा दृश्य है ॥

टीकाः-आचार्य ने कहा हैः-जिस प्रकार कि विजय और पराजय योद्धाओं की होती है परन्तु स्वामी की जय वा पराजय कही जाती है और वह स्वामी ही उस फलका भोक्ता होता है इस प्रकार बन्ध मोक्ष बुद्धि में ही वर्तमान होते हैं परन्तु पुरुष के कहे जाते हैं और वह पुरुष ही उस बन्ध मोक्ष फल का भोक्ता होता है ॥ बुद्धि की ही पुरुष के वास्ते जो परिसमाप्ति यानी सफलता है सो बन्ध है और पुरुष के लिये ही उसकी निवृत्ति हो जानी मोक्ष है ॥ इससे ज्ञान, धारणा शङ्का समाधान और तत्वज्ञान में हठ पूर्वक प्रयत्न यह सब ही बुद्धि में वर्तमान हैं, परन्तु मोक्ष फल के सहित भोक्ता पुरुष में अध्यारोपित है, क्यों कि दृश्य के आधीन ही दृष्टा कहलाता है, इसी लिये, प्रथम दृश्य का स्वरूप कहा है अब उसी का विशेष लक्षण कहते हैं ॥

मूलः–विशेषाविशेष लिङ्गमात्रा लिङ्गानि गुण पर्वाणि ॥१६॥

अर्थः–विशेष=५ भूत ११ इन्द्रिय मिला कर १६ विकार रूप॥ अविशेष = ५ तन्मात्रा १ अहंकार ऐसे षट परिणाम वाले ॥ लिङ्ग मात्रा =महतत्वरूप। अलिङ्गानि=और मूल प्रकृति रूप अलिंग मिलाकर चारों॥ गुण पर्वाणि=गुणोंकी (अर्थात् त्रिगुणात्मक दृश्य की) अवस्था हैं ("विशेषाविशेष लिङ्ग मात्रा लिङ्गानि" यह एक ही समास है") ॥

मूलः–दृष्टा, दृशि मात्रःशुद्धोऽपि, प्रत्ययानुपश्यः ॥ २० ॥

अर्थः—दृष्टा दृशि मात्रः=दृष्टा कूटस्थचिति शक्ति मात्र (ज्ञानरूप) है॥ शुद्धः अपिः=शुद्ध अर्थात् अपरिणामी भी है तो भी॥ प्रत्ययानुपश्यः=बुद्धि की वृत्ति के अनुसार देखने वाला है॥

टीकाः—दृष्टि मात्र चिद शक्ति ही, विशेष रूप से अपरिणामी विचार की गई है, वह बुद्धि का दृष्टा है, वह न बुद्धि के समान रूप है, न अत्यन्त विरूप है॥ वह चिति शक्ति, बुद्धि के समान रूप तो इस लिये नहीं है क्योंकि ज्ञात अज्ञात विषय से रहित है॥ बुद्धि विकारी है उसका विषय गो घटादि ज्ञात भी है और अज्ञात भी है॥ तब बुद्धि से विरूप आत्मा होगा ? ऐसा नहीं है, अत्यन्त विरूप भीं नहीं है क्योंकि (निर्विकार कूटस्थ) शुद्ध हो कर भी यह वृत्ति के अनुसार दृष्टा है अर्थात वृत्ति ज्ञान के अनुसार देखता हुआ भी वह आत्मा उसका स्वरूप जैसा नहीं ज्ञात होता है। (किन्तु सांची दृष्टा, बुद्धि रूप दृश्य से पृथक ही है)॥

मूलः—तदर्थएव दृश्यस्यात्मा ॥ २१ ॥

अर्थः–दृश्यस्य आत्मा तदर्थ एव=दृश्य का स्वरूप पुरुष के अर्थ ही है॥

टीकाः—दृश्य, चैतन्य स्वरूप पुरुष के कर्म का विषय माना जाता है, इस लिए दृश्य का स्वरूप पुरुष के वास्ते ही हैं॥ उस दृश्य का स्वरूप तो भिन्न रूप से ज्ञात, भोग मोक्ष का विषय माना हुआ है। उसका ऐसा पुरुष के सदृश स्वरुप नही जाना जाता है॥ यदि दृश्य के स्वरूप की हानं यानी निवृत्त मानलें तो दृश्य का नाश हो, परन्तु उसका तो नाश नहीं होता क्यों कि:–

मूल:—कृतार्थं प्रति नष्टमनष्टं तदन्न साधारण त्वात् ॥२२॥

अर्थ:—कृतार्थं प्रति नष्टं अपि, अनष्टं तत् अन्य साधारणत्वात् =विद्वान् के प्रति नष्ट हुआ, भी दृश्य, अविद्वान के प्रति अनष्ट है अविद्वान के प्रति और उससे भिन्न विद्वान के दृश्य को साधारण एक होने से ॥ (जैसे किसी चोटी पर कोई खड़ा हो तो उसको अब चोटी नहीं दीखती परन्तु अन्य को तो चोटी दीखती है तद्वत् ॥)

टीका:—एक कृतार्थ योगी ज्ञानी के लिये दृश्य नहीं भी है (अर्थात् अत्यन्त असत् भी है) परन्तु अन्य पुरुष के लिए साधारण विद्यमान है, नष्ट नहीं है, कुशल पुरुष के लिए नाश को प्राप्त हुआ भी, अकुशल अकृतार्थ पुरुषों के प्रति दृश्य, उनके कर्म का विषय होकर लब्ध होता है॥

मूल:—स्व स्वामि शक्तयोः स्वरुप उपलब्धि हेतुः संयोगः॥२३॥

अर्थ:—स्वशक्ति अर्थात् दृश्य, और स्वामी शक्ति अर्थात् पुरुष, इन दोनों के स्वरूप के ज्ञान का हेतु, इन दोनों का सम्बन्ध है ॥

टीका:—पुरुष जो स्वामी है, वह अपने दृश्य के साथ, दर्शन के वास्ते संयुक्त है, उस संयोग से, दृश्य का ज्ञान होता है, जिसको भोग कहते हैं, और जो दृष्टा के स्वरूप का ज्ञान है वह मोक्ष है, संयोग, दर्शन रूप कार्य्य को करके समाप्त होता है, दर्शन रूप जो ज्ञान है वह, अदर्शन के बियोग का कारण है यह कहा ॥ दर्शन अदर्शन का प्रतिद्वन्द्वी है अर्थात् विरोधी है, इस लिये संयोग निमित्त से, अदर्शन का अदर्शन कहा ॥ यहां दर्शन मोक्ष का कारण है-यह बात नहीं है, किन्तु पुरुष को, अदर्शन के अभाव से ही, बन्ध का अभाव है, वही मोक्ष है; इस प्रकार दर्शन होने से, बन्ध के कारण अदर्शन का नाश होता है, इस वास्ते दर्शन जो ज्ञान है, वह कैवल्य मोक्ष का कारण कहा ॥

मूल:—तस्य हेतु रविद्या ॥ २४ ॥

अर्थ:—जो प्रत्यक् चैतन्य दृष्टा का स्वबुद्धि के साथ संयोग होता है उस संयोग का हेतु अविद्या है अर्थात विपर्यय ज्ञान वासना है॥

टीका:—विपरीत ज्ञान की वासना से वासित जो बुद्धि है, न तो कार्य में निष्ठा को प्राप्त होती है, न पुरुष के साक्षात्कार को प्राप्त होती

है, अधिकार सहित फिर आती जाती रहती है ॥ जो बुद्धि अज्ञान की निवृत्ति वाली है, वह पूरुष के साक्षात्कार को प्राप्त होकर रहती है, ज्ञान कार्य में निरन्तर स्थित होती है, उसका अधिकार अर्थात् भोग समाप्त हो जाता है, वह पुनर्जन्म को नहीं प्रप्त होती है, क्यों कि उसके बन्धन का कोई कारण नहीं रहा ॥ इसमें किसी एक देशी वादी की शङ्का को कहते हैं, कि किसीने एक नपुन्सक से ब्याही हुई स्त्री की बात सुनाई थी– वह स्त्री भोली थी, अपने नपुंसक पति से उसने कहा कि हे आर्य पुत्र मेरी बहन पुत्रवती है, मेरे क्यों पुत्र नहीं है, उसके पति ने उत्तर दिया, कि मैं मर कर तेरे पुत्र उत्पन्न करूंगा ॥ भला इसी प्रकार जब यह विद्यमान ज्ञान चित्त की निवृत्ति नहीं करता, तब विनष्ट होकर करेगा, इसकी क्या आशा है ॥ किसी एक देशी आचार्य की यह शङ्का है सो उचित नहीं है, क्योंकि बुद्धि की निवृत्ति ही मोक्ष है, अज्ञान रूप कारण का अभाव होने से, बुद्धि की निर्वृत्ति होती है, वह अदर्शन यानी अज्ञान ही बन्ध का कारण है, ज्ञान से निवृत्ति होता है, तब चित्त की निवृत्ति रूप मोक्ष ही है, विना स्थान के, मति का भ्रम प्राप्त क्यों किया जावे ? ॥

मूलः—तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यं ॥२५॥

अर्थः—अविद्या के अभाव से उसके किये हुये संयोग का अभाव, हान है, और वही पुरुष का कैवल्य है ॥

टीकाः—उस अदर्शन अर्थात् अज्ञान का अभाव होने से, बुद्धि और पुरुष के संयोग का अभाव होता है, अर्थात् आत्यन्तिक बन्ध की निवृत्ति होती है, यह अर्थ है, यही हान है, वही दृशी चैतन्य आत्मा का कैवल्य है, जो पुरुष की असंगता यानी किसी से मिश्रित न होना है, फिर गुणों के संयोग से रहित होकर रहना है ॥ दुःख के कारण की निवृत्ति होने से, दुःख की निवृत्ति रूप हान होती है, तब "पुरुष स्वरूप में स्थित है" ऐसा कहा जाता है ॥

मूलः– विवेकख्याति रविप्लवा हानो पायः ॥ २६ ॥

अर्थः—अविप्लवा विवेकख्याति हानोपायः=सँशय विपर्यय रूप

विप्लव अर्थात् उपद्रव से रहित जो विवेक दर्शन है, सो अविद्या दुःख निवृत्ति रूप हान यानी मोक्ष का उपाय है ॥ बुद्धि और पुरुष का प्रथक् २ करके जानना विवेकख्याति है और वह तो मिथ्या ज्ञान के निवृत्त न होने से उपद्रव करती है, जब मिथ्या ज्ञान यानी अविद्या रूप विपर्यय बीज, संस्कार रूप अज्ञान सहित, दग्ध होकर के, रचना की सामर्थ्य से रहित होता है, तब विघ्न क्लेश रूप मल वाली बुद्धि की अत्यन्त स्वच्छता के होने पर, अपर वैराग्य के वशी कार संज्ञा को प्राप्त होने पर, विवेक ज्ञान का प्रवाह निर्मल होता है, वह विवेकख्याति (संशय विपर्यय विप्लव) उपद्रव से रहित, मोक्ष का उपाय है ॥

मूलः तस्य सप्तधा प्रान्त भूमिः प्रज्ञा ॥ २७ ॥

अर्थः—उस विवेकख्याति वाले (आत्मसाक्षात्कारवान्) पुरुष की सप्त प्रकार की काष्ठा को पहुंचाने वाली अर्थात् ज्ञान की सीमा को पहुंचाने वाली प्रज्ञा होती है ॥

टीकाः—अशुद्धि और आवरण और मल के निवृत्त होने से, चित्त की आत्माकार वृत्ति से इतर वृत्तियों की उत्पत्ति का अभाव होने पर, विवेकी के सप्त ७ प्रकार की प्रज्ञा होती हैं वह इस प्रकार हैः—प्रथम चार प्रकार की कार्य विमुक्ति कहलाती है—(१) जो जानने योग्य था सो जान लिया अब इसको कुछ जानने योग्य शेष नहीं रहा, इसको ज्ञात ज्ञातव्यता कहते हैं, इससे जिज्ञासा की निवृत्ति होती हैं ॥ (२) हेय जो दुःख संसार या विक्षेप है उसका हेतु जो दृष्टा दृश्य का संयोग और उसका कारण अविद्या है, उन का क्षय हो चुका अब उनका नाश होना नहीं रहा। यह हतहातव्यता है यानी जिहासा की निवृत्ति है ॥ (३) निरोध समाधि से हान (जो कैवल्य मोक्ष है यानी हेय की निवृत्ति हुये पुरुष चिति की जो स्वरूप में स्थिति है उस) का साक्षात्कार कर लिया ॥ यह प्राप्त प्राप्तव्यता है इससे प्रेप्सा की निवृत्ति कही ॥ (४)-विवेकख्याति रूप हान का उपाय निश्चय किया, यह कृत कृत्यता है इससे चिकीर्षा की निवृति होती है यह कार्यविमुक्ति कहीं अब प्रज्ञा की चित्त विमुक्ति कहते हैं सुनोः- (५) चरित अधिकार वाली मुक्ति अर्थात् जब

बुद्धि की क्रिया का और भोग का अधिकार समाप्त हो चुका वैसी बुद्धि की स्थिति ॥ (६) बुद्धि गुणा मुक्ति अर्थात् जब पहाड़ की चोटी से गिरे हुए पत्थर की न्याई संस्कार निरोधाभिमुख हुए बुद्धि सहित अन्तर प्रकृति में लीन होते चले जाते हैं और मिट जाते हैं और तब उन प्रलीन हुए हुए जनों की पुनरावृत्ति नहीं होती वैसी बुद्धि की स्थिति बुद्धि गुणा विमुक्ति है ॥ क्योंकि उसका कोई प्रयोजन नहीं रहा ॥ (७) प्रज्ञा गुण-सम्बन्धातीता मुक्ति है इस अवस्था में स्वरूप मात्र ज्योति शुद्ध मल रहित, गुण सम्बन्ध से अतीत केवली पुरुष है ॥

इस सप्त प्रकार की अवस्था रूप मुक्ति वाली प्रज्ञा को गुरुशास्त्र के अनुसार जानता हुआ पुरुष, कुशल कहलाता है ॥ चित्त के उल्टे परिणाम से प्रकृति में लीन होते हुये भी मुक्त कुशल होता है क्यों कि गुणातीत यानी असङ्ग होकर रहता है ॥ इससे सिद्ध होता है कि विवेक-ख्याति हान का उपाय है ॥ अब उसके साधन कहते हैं :—

मूलः-योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धि क्षये ज्ञान दीप्ति राविवेक ख्यातेः ॥ २८ ॥

अर्थः "योगाङ्ग अनुष्ठानात् अशुद्धि क्षये"=योग के अष्ट अङ्गों के अनुष्ठान से अशुद्धि के नाश होने पर "ज्ञान दीप्तिः अविवेक ख्यातेः" =ज्ञान का प्रकाश होता है विवेकख्याति पर्यन्त अर्थात् जब तक सम्पूर्ण विवेक ख्याति प्राप्त न हो जावे तब तक ॥

टीकाः-योग के ८ अङ्ग जो आगे हम कहेंगे उनके अनुष्ठान से अविद्या अस्मिता आदि पंच क्लेश रूप गांठों यानी विभाग वाले अशु-द्धिरूप विपर्यय का नाश होता है, उसके नाश होने से सम्यक् ज्ञान का प्रकाश होता है ॥ जैसे २ साधनों का अनुष्ठान होता है वैसे २ अशुद्धि की सूक्ष्मता होती है यानी उसका विनाश होता है, जैसे २ क्षय होता जाता है उस क्षय के क्रम के अनुसार ज्ञान बढ़ता जाता है जब तक पूर्ण वि वेक ख्याति प्राप्त हो तब तक ॥

मूलः—यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा

ध्यान समाधयो ऽष्टावङ्गानि ॥ २९ ॥

अर्थ:-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और संप्रज्ञात समाधि-यह आठ समाधि के अङ्ग अर्थात् साधन हैं ॥ इनके अभ्यास से अशुद्धि के नाश होने पर ज्ञान होता है ॥

मूल:- अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहा यमाः ॥३०॥

अर्थ:- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, यह पांच यम हैं ॥ (इनमें से अहिंसा सब यमों में प्रधान है) ॥

टीका:- (१) अहिंसा=सर्व प्रकार से, सर्व काल में, सर्व प्राणियों के साथ अभिद्रोह अर्थात् परघात का, न होना अहिंसा है ॥ (२) सत्य= यथावत् अर्थ में मन वाणी की प्रवृत्ति से, जैसा देखा जसा अनुमान किया और जैसा सुना वैसा मन वाणी का व्यापार होना, सत्य है ॥ यदि ऐसा कथन किसी प्राणी के अभिघात के लिये हीं हो तो वह सत्य नहीं है पाप रूप ही है, तिस आभास मात्र पुण्य से उस सत्य को पुण्य के विरोधी होने से महाकष्ट की प्राप्ति होगी, इस लिए विचार करके सर्व प्राणियों के हितकारी सत्य का कथन करना योग्य है ॥ (३) अस्तेय= अशास्त्र पूर्वक, द्रव्य का परजन से स्वीकार कर लेना यानी अपहरण कर लेना या ले लेना स्तेय है उस स्तेय का विरोधी पुनःनिषेध, अस्पृहा-रूप अस्तेय है । (४) ब्रह्मचर्य=गुप्त इन्द्रिय उपस्थ का संयम ब्रह्मचर्य है॥ (५) अपरिग्रह=विषयों के उपार्जन, रक्षण, क्षय, संगदोष और हिंसा इन दोषों को देख कर जो उनका स्वीकार न करना है, सो अपरिग्रह है ॥ यह पांच यम कहे ॥ (अब भी जो लोग कोई कोई गृहस्थ वा सन्यासी वस्तुतः जितना यमादिक का पालन करते हैं वैसी ही सफलता भी देखने में आती है ॥)

मूल:--जाति देश काल समयानवच्छिन्नाः सार्व भौमा महाव्रतम् ॥ ३१ ॥

अर्थ:-यह यम, यदि जाति, देश, काल और निमित्त से बिछुड़ न गये हों, चारों अवस्थाओं में यानी सब जातियों में सब देश में, सब

सर्व समय में,

काल में, और सब निमित्तों के वर्तमान हुए भी सदा एकरस वर्तते हों तो महाव्रत हैं ॥)

टीका:—मैं केवल मत्स्य जाति की ही, आहार के वास्ते हिंसा करूंगा अन्यत्र कहीं नहीं करूंगा, ऐसी अहिंसा, जाति के विच्छेद वाली अहिंसा है ॥ मैं तीर्थ में हिंसा नहीं करूंगा, तीर्थ से अन्यत्र ही करूंगा ऐसी अहिंसा देशावच्छिन्न अहिंसा है ॥ मैं चतुर्दशी आदिक पुण्यकाल में नहीं हनन करूंगा यह अहिंसा कालावच्छिन्न है ॥ मैं त्रिकाल संध्या के समय नहीं हनन करूंगा यह समयावच्छिन्न अहिंसा है ॥ मैं देवता ब्राह्मणार्थ छोड़ कर अथवा युद्धकाल को छोड़ कर अन्यत्र हिंसा नहीं करूंगा इत्यादिक निमित्त वाली नियम बद्ध अहिंसा हैं, इन्हों से अतिरिक्त एक रस रहने वाली, सर्वदा सर्वथा सर्वत्र सर्व के लिये रहने वाली अहिंसा सार्वभौम महाव्रत हैं ऐसे ही सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह रूप यमों में सार्वभौम महाव्रतका नियम जानलेना परन्तु यथा शास्त्र हो ॥

मू:—शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः ॥ ३२ ॥

अर्थ:—शौच सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान यह पांचो नियम कहलाते हैं ॥ (१) अन्तर रागद्वेष मल की निवृति और बाह्य जल प्रक्षालन आदि से देह वस्त्र पात्रादिकों के मलकी निवृति शौच है ॥ (२) यथा शास्त्र यदृच्छा लाभ में प्रसन्नरहना सन्तोष है ॥ (३) द्वन्द्वोंका सहन तप है अर्थात् शीत उष्ण मान अपमान, स्तुति निन्दा इत्यादिक जो विरोधी ताप हैं उनको उपेक्षाकी दृष्टिसे वर्तलेनातप है ॥ (४) मोक्ष शास्त्र का नित्य अवलोकन करते रहना स्वाध्याय है ॥ (५) कायक वाचक मानसिक क्रियाओं का ईश्वर की आज्ञा के अनुसार वर्तना और उन क्रियाओं कोई ईश्वरार्पण करना ईश्वरप्रणिधान है तथा ईश्वरकी कायक वाचक मानसिक भक्ति विशेष ईश्वरप्राणिधान है सो पूर्वक कहचुके हैं ॥ यह पांचों नियम हैं ॥ (इन के अभ्यास से जो फल होता है वह आगे कहेंगे, यह दशोंयम नियम योगीके लिये आवश्यक

योगके साधन हैं परन्तु यमों के सेवन के बिना नियमों का सेवन करना अथवा उन से अपने आप को कृतार्थ मानना व्यर्थ है क्यों कि यमों के अनुष्ठान के बिना नियम प्रतिष्ठत नहीं रह सकते प्रत्युत दंभ गर्व अहंकारादिक की वृद्धि को प्राप्त करेंगे इसी लिये आचार्य ने कहा है कि:-यमों का निरन्तर सेवन करो नियमों को ही प्रथम आगे से न सेवन करो क्यों कि केवल नियमों को सेवन करने वाला और यमों को न सेवन करने वाला पुरुष पतित होता है ॥)

मूल:—वितर्क बाधने प्रतिपक्ष भावनम् ॥ ३३ ॥

अर्थ:-वितर्क यमादिकों के विरोधी जो हिंसा आदिक हैं, उन के निवृत्त करने के वास्ते उनमें दोष दर्शन कराने वाली और दुःख फल बाधन करने वाली तथा विरोधी पक्ष वाली जो अहिंसा आदिक और शौचादिक हैं उन साधनों के अनुष्ठान की भावना करनी योग्य है ॥

मूल:—वितर्का हिन्सादयः कृत कारितानुमोदिता, लोभ क्रोध मोह पूर्वका मृदु मध्याधि मात्रा, दुःखा ज्ञानानन्त फला इति प्रति पक्ष भावनम् ॥ ३४ ॥

अर्थ:—वितर्क हिंसादिक दसों दोष स्वयं किये हों अथवा किसी से कराये गये हों अथवा अनुमोदन किये हुए हों वे एक एक, लोभ, वा क्रोध, वा मोह सहित, हों, तथा वे एक एक भेद वाले, मृदु वा मध्य वा अधिमात्र रूप हों इस प्रकार वे ८१ भेद वाले, दोष, सब दुःख और अज्ञान वा अनन्त आयुष, भोग और निन्दित योनी रूप फल देने वाले हैं इस प्रकार की वैराग जनक और भय जनक भावना जो उन दोषों को छुड़ाने वाली है सो प्रति पक्ष भावना है ॥

मूल:—अहिन्सा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागः ॥ ३५ ॥

अर्थ:-अहिंसा के प्रतिष्ठित होने पर अर्थात् सार्वभौम होने पर उसकी समीपता में (मूषक बिलाव आदि के वा परस्पर शत्रु गणों के) विरोधियों के वैर का त्याग हो जाता है ॥ (इसी कारण से अमेरिका वाले कई जन महात्मा गांधी को दूसरा ईसामसीह कहते हैं) ॥

मूल:—सत्य प्रतिष्ठायां क्रिया फला श्रयत्वम् ।। ३६ ।।

अर्थः—सत्य की प्रतिष्ठा हुए योगी को क्रिया के फल की आश्रयता हो जाती है अर्थात् वह योगी स्वयं उस स्वर्गादि फल को अपनी वाणीं के वरमात्र से प्रदान कर सकता है जो यज्ञादि अनुष्ठान से प्राप्त हुआ करता है ॥ जैसे कि यदि वह कहे "हे धार्मिक तेरे लिए ऐसा हो" तो वैसे ही हो जाता है "तू स्वर्ग गामी हो" एसा कहने से अवश्य वैसा ही हो जाता है ॥ (स्वामी विवेकानन्द स्वामी राम तीर्थ-महात्मा गांधी स्वामी दयानन्द आदिकों के उपदेश के प्रभाव प्रत्यक्ष हैं) ॥

मूल:—अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्व रत्नो पस्थानम् ।। ३७ ।।

अर्थः—अचौरता वा अपरिग्रह से अस्तेय के प्रतिष्ठित होने पर सर्व रत्नों की उपस्थिति होती है ॥ (वेईमानी के कारण ही साख नहीं, व्यापार नहीं व्यवशाय नहीं विश्वास नहीं परन्तु दरिद्रदा बढ़ती जाती है कचहरी भरी रहती हैं) ॥

मूल:—ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभः ।। ३८ ।।

अर्थः—ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा के होने पर शक्ति विशेष का लाभ होता है, जिस से कि विना किसी विरोध के गुणों को बढ़ाता है और सिद्ध होकर शिष्यों को ज्ञान देने में समर्थ होता है ।। (ब्रह्मचर्य, बारह १२ वर्ष की आयुष से ही पाठशाला स्कूल कालिजों में ही परस्पर के विचित्र कुसंग से और अध्यापकों की नीचता से भी नष्ट होता देखा गया है यह बात विचारने योग्य हैं) ॥

मूलः—अपरिग्रहस्थैर्ये जन्म कथंता संवोधः ।। ३९ ।।

अर्थः—अपरिग्रह के स्थिर होने पर, जन्म किस प्रकार से हुआ इत्यादिक ज्ञान हो जाता हैं, अथवा शरीर रूप परिग्रह से भी रहित होकर अपने को सर्वदा असंग (अज) जान लेता है ॥

टीकाः—उस योगी को जो हुवा करती है अपने स्वरूप के जानने की इच्छा कि मैं कौन था कैसे था, यह क्या है कैसे है, मैं क्या होऊंगा इत्यादि सब आगे पीछे मध्य कीजिज्ञासा, स्वरूप के ज्ञान से निवृत्त हो

जाती है ॥

मूलः—शौचात्स्वांग जुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥ ४० ॥

अर्थः—बाह्य शौच से अपने अँगों में ग्लानी और पर से असंसर्ग होता है ॥ (ढोंग रचना अत्याचार शौच नहीं है) ॥

मूलः—सत्व शुद्धि सौमनस्यैकाग्र्येन्द्रिय जयात्मदर्शन योग्यत्वानि च ॥ ४१ ॥

अर्थः—अन्तर मन के शौच से अर्थात् मैत्री करुणादिक भाव रूप शौच से, अन्तः करण की शुद्धि एकाग्रता, इन्द्रियों का जय, तथा आत्मदर्शन की योग्यता होती है (मानसिक शौच न होने से ही धर्म की और भक्ति की आड़ में व्यभिचारादि दोष होते हैं)।

मूलः—सन्तोषादनुत्तम सुख लाभः ॥ ४२ ॥

अर्थः—सन्तोष से सर्व से उत्तम सुख का लाभ होता है सो कहा है:-जो संसार में काम का सुख है जो स्वर्ग का महान सुख है, सो त्रष्णा के नाश के सुख के सोलहवें भाग के भी तुल्य नहीं है ॥ ४२ ॥ (भीतर मन में लालसा परन्तु प्रमाद वश अकर्मण्या संतोष नहीं है ॥)

मूलः—कायेन्द्रिय सिद्धि रशुद्धि क्षयात्तपसः ॥ ४३ ॥

अर्थः—तपसः, अशुद्धि क्षयात्, कायेन्द्रिय सिद्धिः=प्रतिष्ठित तप से अशुद्धि के अर्थात् आवरण तथा मल के नाश होने से अणिमादि जो काया की सिद्धियां है और दूर से श्रवण दर्शनादि जो इन्द्रियों की सिद्धियां हैं वे प्राप्त होती हैं ॥ (दंभपूर्वक कठोर दृश्य दिखाना तप नहीं है ।)

मूलः—स्वाध्यायादिष्ट देवता संप्रयोगः ॥ ४४ ॥

अर्थः—स्वाध्याय से इष्ट देवता की प्राप्ति होती है, देवता सिद्धादिक का दर्शन होता है वे उसका काम करते हैं ॥

मूलः—समाधि सिद्धि रीश्वर प्रणिधानात् ॥ ४५ ॥

ईश्वर प्रणिधान से समाधी की सिद्धि होती है ॥ बगुला भक्ति

ईश्वर प्रणिधान नहीं है।)

मूलः—स्थिर सुखमासनम् ॥ ४६ ॥

जिस में अचल होकर, सुख पूर्वक, बैठ सको, वह बैठक, आसन है ॥ अब आसन के जो दृष्ट और अदृष्ट विघ्न हैं उनकी निवृत्ति के उपाय को कहते हैं—

मूलः—प्रयत्न शैथिल्यानन्त समापत्तिभ्याम् ॥ ४७ ॥

अर्थः—प्रयत्न की शिथिलता से अर्थात् परिश्रम करना छोड़ देने से और अनन्त में धारणा के अभ्यास से कि "मैं शेष हूं सब का धारण करके अचल स्थित हूँ" चलते फिरते इस दृढ़ भावना से, आसन की सिद्धि होती है ॥ स्थिरता की दृढ़ भावना से स्थिर बैठने लगता है ॥

मूलः—ततोद्वन्द्वानभिघातः ॥ ४८ ॥

अर्थ—ततः=उस आसन के जय होने से ॥ द्वन्द्वानभिघातः= यथा पूर्व द्वन्द्वों से पीड़ित नहीं होता ॥

मूलः—तस्मिन्सति श्वास प्रश्वासयोर्गति विच्छेदः प्राणायाम. ॥ ४९ ॥

अर्थः—उस आसन जय के होने से, श्वास और प्रश्वास की स्वाभाविक गति का अभाव रूप प्राणायाम होता है अर्थात् श्वास प्रश्वास अत्यन्त सूक्ष्म गतिवान क्षीणवत प्रतीत होते हैं (ऐसा न हो तो मृत्यु हो जावे क्यों कि श्वास का अत्यन्ता भाव मृत्यु का चिन्ह है) ॥

मूलः—वाह्याभ्यन्तर स्तंभ वृत्ति, देश काल संख्याभिः परिदृष्टो, दीर्घ सूक्ष्मः ॥ ५० ॥

अर्थः—प्राणायाम, रेचक पूरक कुम्भक, तीन प्रकार का होता है द्वादश अंगुल पर्यन्त इत्यादि देश और इतने क्षण मुहूर्त्त इत्यादि काल, और इतने प्रणव का जप इत्यादिक संख्या से परिचित हुवा, दीर्घ और सूक्ष्म होता है ॥

मूलः—वाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी चतुर्थः ॥ ५१ ॥

अथः—रेचक पूरक विषय के अनादर वाला और बाह्य अभ्यन्तर कुम्भक की अपेक्षा रहित चतुर्थ प्रकार का प्रायाणाम, जहां का तहां स्तम्भ हो जाना, केवल कुम्भक है ॥

मूलः—ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ ५२ ॥

अर्थः—उस प्राणायाम से, बुद्धि सत्व रूप ज्ञान प्रकाश को ढकने वाले तम का नाश होजाता है ॥

टीकाः—प्राणायामों के अभ्यास से, इस योगी के, विवेक ज्ञान को आवरण करने वाले कर्म का नाश हो जाता है सो कहते हैं:—महा मोहमय इन्द्रजाल से. प्रकाशमान बुद्धि के ज्ञान को ढक कर उसको अकार्य में नियुक्त करके, वह उसके ज्ञान को दबाने वाला कर्म, संसार निमित्तक हो जाता है, परन्तु प्रायाणाम के अभ्यास से वह कम, दुर्बल हो जाता है, और क्षण २ में क्षीण होता रहता है, इसी बात को आचार्य ने कहा है:– प्रायाणाम से अधिक उत्कृष्ट साधन और कोई नहीं है, उससे मलों की अत्यन्त शुद्धि यानी निवृत्ति होती है और ज्ञान का प्रकाश होता है ॥

मूलः—धारणासु च योग्यता मनसः ॥ ५३ ॥

अर्थ —और प्रायाणाम से मनकी धारणा में योग्यता होती है ॥

मूलः—स्वविषया संप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ ५४ ॥

अर्थः—स्वविषय असंप्रयोगे=इन्द्रियों का अपने शव्द आदिक विषयों के साथ, सम्बन्ध का अभाव होने पर ॥ चित्तस्य स्वरूपानुकार इव=जैसा चित्त का निरोध काल में स्वरूप होता है उस की न्याईं, अपने अपने बिषयों को छोड़ कर स्व स्व गोकल में स्थिति पूर्वक, निरुद्ध वत आकारवान् होना ॥ इन्द्रियाणां प्रत्यहार=इन्द्रियों का प्रत्याहार है ॥

टीकाः—अपने विषय के साथ सम्वन्ध का अभाव होने पर यानी चित्त के निरोध की न्याई इन्द्रियों के निरुद्ध होने पर, न कि जैसे विजित इन्द्रियता का उपाय होता है वैसे, किसी उपाय की अपेक्षा है,

किन्तु जैसे मधुकर राज के पीछे उसके अनुसार ही मक्षिका निकलती हैं नहीं तो निरुद्ध होती हैं उनकी न्याईं, इन्द्रियां चित्त के निरुद्ध होने से निरुद्ध हो जाती हैं यह उन इन्द्रियों का प्रत्याहार है ॥

मूलः—ततः परमावश्येन्द्रियाणाम् ॥ ५५ ॥

अर्थः—उस प्रत्याहार से, इन्द्रियों की अपने अपने विषय शव्दादिकों में प्रवृत्ति का अभाव होता है अर्थात् इन्द्रियां परम बश में हो जाती हैं ॥ ५५ ॥

इस दूसरे क्रिया पाद में, विक्षिप्त चित्त वाले पुरुष के प्रति, समाधि प्राप्ति के साधन, अष्ट अंग वाले योगानुष्ठान का निरूपण किया, शेष के तीन साधन धारणा ध्यान समाधि का निरूपण करना अभी रहता है सो तृतीय विभूति पाद में निरूपण करेंगे ॥ विभूति पाद में आगे चित्त शुद्धि द्वारा होने वाले ऐश्वर्य और ज्ञान का जो कथन करेंगे, उसका यह तात्पर्य्य है कि विभूति को भी ईश्वर का अंश मात्र होने से, उसकी प्राप्ति भी ईश्वर प्राप्ति के मध्य उन्हीं साधनों से होती है ॥ जिनको विभूति की इच्छा हो वे उसी कामना से योग साधन करके एकाग्र चित्त से अवलोकन यानी धारणा, तन्मयता यानी ध्यान और समाधि यानी साक्षात्कार से वांछित कामना की प्राप्ति कर सकते हैं परन्तु ईश्वर प्राप्ति में यह वाधक हैं ॥ ईश्वर की प्राप्ति की इच्छा वालों को तो उससे भिन्न सव कामनाओं का परवैराग पूर्वक निरोध करना होगा ॥ ज्ञाततः प्राप्त हों अथवा अज्ञाततः प्राप्त हो जावें सव विभूति रूप सिद्धियां अविद्या का कार्य है दुःख रूप है और हेय है, इस लिए विवेकख्याति द्वारा हातव्य है और परमात्मा में स्थिति रूपी हेय की हान होना आवश्यक है, यही कैवल्य मोक्ष है ॥ जिनको विभूति ही इष्ट है वे यूरुप वालों की न्याई भौतिक विज्ञान रूप विभूतियों का सम्पादन करें और शिक्षा के लिये विद्यालय खोलें परन्तु साधन वही यम नियम आसन पूर्वक तत्परता है ॥

॥ श्री मङ्गल मूर्त्तये नमः ॥

अथ श्री पातञ्जल योग दर्शनं

तृतीयः विभूति पादः ॥
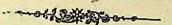
मूलः—देश वंधश्चित्तस्य धारणा ॥ १ ॥

अर्थः—ध्येय रूप देश के साथ, वृत्ति मात्र से चित्त का जो सम्बंध यानी बांधना है, सो धारणा है ॥ १ ॥

मूलः—तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ २ ॥

अर्थः—उस ध्येय में, वृत्तियों का, समानाकार एक रस, सजातीय प्रवाह, ध्यान है ॥ २ ॥

मूलः—तदेवार्थ मात्र निर्भासं, स्वरूपशून्यमिव समाधिः ३॥

अर्थः—वह ध्यान ही, केवल अर्थ मात्र ध्येय के आकार से भासमान, आप स्वरुप रहित की न्याईं "अर्थात् मैं ध्येय में समाधिस्थ हूं" इस अपनी भावना से रहित, बुद्धि की अवस्था, समाधि है ॥

मूलः—त्रयमेकत्र संयमः ॥ ४ ॥

अर्थ—धारणा ध्यान और समाध तीनों मिला कर संयम कहलाते हैं ॥ ४ ॥ (आंखें वंद करके बैठना ही संयम नहीं है, जैसे एक ध्यान का अभ्यास मानसी क्रिया मात्र होने से वैठ कर किया जाता है वैसे खड़े होकर भी हो सकता है, चित्त की दृढ़ लग्न आवश्यक है ॥)

मूलः—तज्जयात् प्रज्ञालोकः ॥ ५ ॥

अर्थ—उस संयम के जय से अर्थात् सिद्ध होने से, प्रज्ञा का स्पष्ट होता है ॥ केवल ध्येय में जो बुद्धि की स्थिति है सो प्रज्ञा लोक है ॥ ५ ॥

मूलः—तस्य भूमिषु विनियोगः ॥ ६ ॥

अर्थः—उस संयम का गृहिता अर्थात् ज्ञाता अहंकार में, ग्रहण अर्थात् ज्ञान में और ग्राह्य अर्थात् ज्ञेय विषय को लेकर, सवितर्क निर्वितर्कादि ८ अष्ट भूमियों में विनियोग अर्थात् अभ्यास किया जाता है ॥

अन्यत्र लिखा है कि:—योग द्वारा याग ज्ञातव्य है अर्थात अभ्यास से अनुभूत होता है, योग से योग प्रवृत्त होता है अर्थात् अभ्यास से ही योग के मार्ग की परंपरा चलती है जो योगाभ्यास द्वारा प्रमाद रहित होता है वह पुरुष दीर्घ काल तक योग में रमण करता है अर्थात् उसका सुख लेता है ॥ ६ ॥

मूलः—त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥ ७ ॥

अर्थः यह तीनों धारणा ध्यान समाधि, यम नियमादि पांचों साधनों से अन्तरङ्ग साधन है अर्थात् सबीज संप्रज्ञात समाधि के समीप के साधन हैं ॥ ७ ॥

मूलः—तदपि वहिरंगं निर्बीजस्य ॥ ८ ॥

अर्थः—वह धारणादिक तीनों साधनों का समुदाय भी निर्वीज असंप्रज्ञात समाधि का बहिरङ्ग साधन हैं ॥ जो सवितर्क निर्वितर्क आदिकों की संप्रज्ञात समाधि थी, वह सजीव कही थी, और उस के भी निरोध से परवैराग द्वारा प्राप्त निर्वीज समाधि कही थी सो कैवल्य रूप है ॥ ८ ॥

मलः—व्युत्थान निरोध संस्कारयो रभिभव प्रादुर्भावौ निरोध क्षण चित्तान्वयो निरोध परिणामः ॥ ९ ॥

अर्थः—व्युत्थान संस्कार का तिरस्कार और निरोध संस्कार का प्रादुर्भाव हुए निरोध युक्त क्षण से चित्त के सम्बंध वाला, चित्त का निरोध परिणाम होता है ॥ ९ ॥

मूलः—तस्य प्रशान्त वाहिता संस्कारात् ॥ १० ॥

अर्थ—पूर्ण निरोध के संस्कारां से, उस निरुद्ध चित्त के संस्कारां

का प्रशान्त वाहिता रूप परिणाम होता है ॥ (जैसे ईंधन पड़ना बन्द होकर, अग्नि शान्त होती चली जाती है इसी प्रकार वृत्तियों के क्षय होने से संस्कार अन्तर वाधित होते चले जाते हैं और स्वरूप भूत शान्ति आविर्भूत होती जाती है) ॥ १० ॥

मूलः—सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्यसमाधि परिणामः ॥ ११ ॥

अर्थ:—सर्वार्थता अर्थात् उत्थान के क्षय होने पर और एकाग्रता के उदय होने पर चित्त का समाधि परिणाम होता है ॥ ११ ॥

मूलः—शान्तोदितौ तुल्य-प्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रता परिणामः ॥ १२ ॥

अर्थ:—शान्त अर्थात् भूतकाल और उदित अर्थात् वर्तमान काल इन दोनो काल के संस्कारां के तुल्य होने पर अर्थात् सजातीय प्रवाह होने पर चित्त का एकाग्रता परिणाम होता है ॥ १२ ॥

मूलः—एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्म लक्षणावस्था परिणामा व्याख्याताः॥ १३ ॥

अर्थ:—इस चित्त के परिणामप्रदर्शन से, भूत इन्द्रियों के धर्म परिणाम (जैसे मृत्तिका के घट कपालादिक हैं ऐसे ही भूतों और इन्द्रियों के कार्य परिणाम होते हैं) और लक्षण परिणाम (जैसे वस्तुओं के भूत भविष्यत वर्तमान कालीन होते हैं, ऐसे ही भूत इन्द्रियों के सामयिक परिणाम होते हैं सो लक्षण परिणाम हैं) तथा अवस्था परिणाम (जैसे वस्तु की नवीनता जीर्णता आदिक है ऐसो ही भूत और इन्द्रियों की होती है) यह भी कह दिए गए हैं ॥ १३ ॥

मूलः—शान्तोदिता व्यपदेश्य धर्मानुपाती धर्मी ॥ १४ ॥

अर्थः—शान्त अर्थात् भूत, उदित अर्थात् भविष्यत और व्यपदेश्य अर्थात् वर्तमान धर्मों में, अन्वयी अर्थात् एक समान वर्तने वाला, धर्मी कहलाता है ॥ जैसे चित्त सर्व अवस्था में अन्वयी होने से धर्मी

है और सत्व रज तमादिक उस के धर्म हैं, ऐसे ही आत्मा धर्मी हैं और कर्तृत्व भोक्तृत्व शुद्धाशुद्ध चित्त रूप धर्म आरोप किये जाते हैं ॥ १४ ॥

मूलः—क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ॥ १५ ॥

अर्थः—क्रम का भेद परिणाम के भेदों में कारण है ॥ जैसे घट की उत्पपत्ति से पहले मृत्ति का पिण्ड होता है पीछे घट होता है यह मृत्तिका के घट परिणाम में क्रम सर्वदा रहता है इसी प्रकार घट के परिणाम रूप कपालों में प्रथम घट पीछे कपाल यह क्रम सर्वदा रहता है ॥ परिणाम के भेद में यही क्रम का भेद सर्वदा हेतु है ॥ १५ ॥

मूलः—परिणाम त्रयसंयमादतीतानागत ज्ञानम् ॥ १६ ॥

अर्थः—धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम इन तीनों परिणामों में संयम करने से, भूत भविष्यत् का ज्ञान होता है ॥ (जैसे कि, विचार किया कि वर्षा ऋतु के समय जब कीट पृथ्वी में से नवीन मृत्तिका बाहर निकालते हों तो वर्षा होने वाली होती है अथवा मेंढक बहुत बोलते हों तो वर्षा का आगमन होता है ॥ कितनेही चिन्हों से दुर्भिक्षका आगम ठीक ठीक अनुमान कर लिया जाता है, चिन्ह देख कर जान लिया जाता है कि देश में आपत्ति आवेगी जैसे कि महाभारत के युद्ध से पूर्व चिन्ह देखे जाते थे वे लिखे हैं, वैसे ही चिन्ह पिछली संसार की लड़ाई में भी देखे जाते थे, जैसे सम्पूर्ण कुत्तों का एक साथ रोना भीषण उलका पात होना, इसी प्रकार मृत्यु के आगम के भी चिन्ह लिखे हैं ॥ मनुष्यों के पूर्व जन्म के वृतान्त ज्योतिष से जान लिये जाते हैं और स्वभाव लक्षण, आकृति से, जान लिये जाते हैं, स्वभाव और लक्षणों और अवस्था के परिणाम विचार में अब भी कुशल विद्वान देशों के भावी पतन और जागृति का अनुमाम कर लेते हैं यही त्रिकालज्ञता है ॥ १६ ॥

मूलः—शब्दार्थ प्रत्ययानामितरे तराध्यासात् सङ्कर स्तत् प्रविभागसंयमात् सर्व भूत रुतज्ञानम् ॥ १७ ॥

अर्थः—शब्द, अर्थ और उनसे जो वृति ज्ञान होता है इन तीनों के परस्पर के अध्यास से इनका सङ्कर यानी मेल होता है, उनके भिन्न२ धर्मों में संयम से, सर्व प्राणियों (पक्षि आदिकों की) वाणी का ज्ञान होता है ॥ (अभ्यास से वनवासी जातियों को कूकर शृङ्गालादि पशु और काग कोयल मयूरादि पक्षियां के भिन्न २ काल के भिन्न २ आकार के शब्दों के सुनते २ उनके भावों के जानने का ज्ञान हो जाता है॥१७॥

मूलः-संस्कार साक्षात्करणात् पूर्व जाति ज्ञानम् ॥ १८ ॥

अर्थः- संस्कारों में संयम के अभ्यास द्वारा, संस्कारों का साक्षात्कार करने से पूर्व जाति का ज्ञान होता है ॥ (जैसे किसी राजा की विशेष रुचि, अन्य सब क्षत्रियों के धर्मों से हट कर कृषी गोरक्ष वाणिज्य की ही ओर प्रवृत्त हो तो समझना चाहिए कि पूर्व जन्म में यह किसी पुण्यात्मा वैश्य के गृह में था ॥ किसी अब्राह्मण जाति के बालक में स्वभाविक शौच तप स्वाध्याय, भक्ति आदिक साधनों की ओर रुचि हो अन्य स्व वर्णाश्रम धर्म की ओर रुचि विशेष न हो तो समझा जाता है कि पूर्व यह बालक किसी योगी वा तपस्वी के गृह में होगा इत्यादिक सर्वत्र जान लेना ॥

टीकाः—भगवान् आवटय ने जैगीषव्य मुनि से पूछा कि इस आयुष की अपेक्षा से प्रधान प्रकृति को वश करना और सन्तोषादि, सब से उत्तम सुख कहे हैं. यह भी तो "सब दुःख रूप है" इस कथन के भीतर ही आगये तो उत्तम सुख कैसा है ? भगवान् जैगीषव्य बोले कि विषय सुख की अपेक्षा से सन्तोष के सुख को उत्तम कहा था परन्तु कैवल्य की अपेक्षा से तो सन्तोष सुख भी दुःख रूप ही है, क्यों कि बुद्धि सत्व का एक धर्म सन्तोष भी है; तीनों गुण बुद्धि के ही धर्म हैं और त्रिगुणात्मक ज्ञान, हेय कोटि में ही गिना जाता है ॥

मूलः—प्रत्ययस्य परचित्त ज्ञानं ॥ १९ ॥

अर्थः—वृत्ति ज्ञान में संयम करने से, अर्थात् वृत्तियों के गुण स्वभाव परिणाम में, धारणा ध्यान समाधि के अभ्यास से वृत्ति ज्ञान के अनुभव साक्षात्कार करने से, पर चित्त का ज्ञान हो जाता है ॥ यह भी

बुद्धिमानों के लिये सहज है मुख की आकृति के अनुसार पर चित्त के भाव जान लिये जाते हैं उस से चित्त के स्वभाव का ज्ञान हो जाता है ॥ १६ ॥

मूलः—न च तत्सालम्बनं तस्याविषयी भूतत्वात् ॥ २० ॥

अर्थः—और वह प्रत्यय भी आलंबन सहित नहीं है अर्थात् विषय सहित नहीं है उस विषय को, योगी के चित्त का विषय न होने से ॥ अर्थात् प्रत्यय मात्र का ही, संयम अभ्यास और साक्षात्कार होता है विषय का नहीं ॥ यह तात्पर्य्य है कि भाव को पहिचानने के अभ्यास से, विशेष विषय को छोड़ कर भाव जान लिया जाता है कि उत्तम है याकनिष्ट है, भाव अनुकूल है वा प्रतिकूल है, इत्यादिक ज्ञान हो जाता है) ॥ २०

मूलः—कायरूपसंयमात्तद् ग्राह्य शक्ति स्तंभे चक्षुः प्रकाशा संप्रयोगे ऽन्तर्द्धानम् ॥ २१ ॥

अर्थः—काय के रूप में संयम से अर्थात् रूप मात्र में धारणादिक के अभ्यास से, रूप की ग्रहण होने योग्य शक्ति के स्तंभ यानी निरुद्ध हो जाने से चक्षु और प्रकाश का सम्बन्ध न होने से, अन्तर्द्धान हो जाता है अर्थात् नेत्रों से नहीं दीखता यद्यपि स्पर्श में आता है ॥ इसी प्रकार स्पर्श मात्र में संयम से स्पर्श में नहीं आता परन्तु दीखता है यह जानना चाहिये ॥ तात्पर्य्य यह है कि मानों किसी ने अपने रूप मात्र में संयम किया कि रूप मात्र से इतर विभाग युक्त मेरा अपना प्रथक आकार किसी को दृष्टि गोचर नहो, इस सङ्कल्प के दृढ़ हो जाने से उस की भावना का प्रभाव अन्यों के चित्तों पर ऐसा पड़ जाता है कि औरों के चित्त, उतने मात्रके अनुभव की स्वशक्ती को प्रगट नहीं कर सकते, क्योंकि योगी के बलिष्ट चित्त से अन्य चित्त दब जाते हैं, इस लिये उस योगी का शरीर दिखाई न देगा ॥ मन्त्र पढ़ के झाड़ने से बिच्छू की डंक की पीड़ा की निवृत्ति तथा दांत की कील देने से पीड़ा की निवृत्ति तथा मेस्मेरिज्म से पीड़ा की निवृत्ति बहुधा देखने में आती है तद्वत

जान लेना ॥ बहुत अमरीका वाले Hypnotism अभ्यास करते हैं ॥

मूलः--सोपक्रमं निरुपक्रमंच कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञान मरिष्टेभ्यो वा ॥ २२ ॥

अर्थः—सोपक्रम अर्थात् शीघ्र फल देने वाला और निरुपक्रम अर्थात् देर में फल देने वाला कर्म होता है, उसमें संयम से (अर्थात् अभ्यास द्वारा परख और साक्षात्कार प्राप्त करने से कि कौन कौन कर्म शीघ्र वा देर में कैसा २ फल देने वाले हैं ऐसा जानने से) और सूचन करने वाले चिन्हों से भी, अपरान्त—ज्ञान, यानी मरण का ज्ञान हो जाता है ॥

टीकाः—अपने करणोंके छिद्रों को रोक कर सुनने से शरीर के भीतर का शब्द (जसको अनाहत शब्द कहते हैं सो) न सुनाई पड़े अथवा नेत्र मूंदने से कुछ भी ज्योति मात्र न दिखाई दे अथवा अकस्मात् मृत पितरों को देखे अथवा अकस्मात स्वर्ग को देखे अथवा सिद्धों को देखे अथवा सब बिपरीत देखे तो जानना चाहिये कि मरण समीप है ॥ २२ ॥

मूलः-मैत्र्यादिषु बलानि ॥ २३ ॥

अर्थः—मैत्री करुणा मुदिता इन तीनों में धारणा ध्यान समाधि के दृढ़ अभ्यास द्वारा संयम सिद्ध करने से, बल प्राप्त होते हैं ॥ (यह प्रत्यक्ष है कि जो पुरुष सुखियों के सुख को अपने ही समझेगा राग द्वेष ईर्षा मत्सर आदि दोषों की निवृति होने से वह सुखी जन भी उससे सहानुभूति और उसके साथ आदर सन्मान का पालन करेंगे, पुण्यवानों से मुदिता रखने से असूया दंभ गर्वादिक दोषों की अपने में से निवृत्ति होगी अपने पुण्यों की भी वृद्धी होगी अपना पुण्यात्मा होने में उत्साह बढ़ेगा, पुण्यवानों का उत्साह बढ़ेगा और उनकी अपने साथ सहानुभूति रहने से अपना बल बढ़ेगा ॥ दीन दुखियों पर करुणा करने से अपने में से अभिमान स्वोत्कृष्टता की संभावना इत्यादिक दोष निवृत्त होंगे और दीन दुखियों के आशीर्वाद प्राप्त होंगे जिससे उत्साह बल वीर्य की वृद्धि होगी ॥ इस लिये बलों

की वृद्धि अवश्य सम्पादन करने के वास्ते प्रत्येक स्त्री पुरुष युवा वृ
को इन तीनों गुणों में संयम करना योग्य है ॥ २३ ॥

मूलः—बलेषु हस्ति बलादीनि ॥ २४ ॥

अर्थः—हस्ति गरुड़ादि बलों में संयम से, हस्ति आदिक के ब
प्राप्त होते हैं ॥ (सैन्डो राममूर्त्ति आदिकों ने संयम किया कि मोटरादि
को रोकने का सामर्थ्य प्राप्त करेंगे, उस संयम के द्वारा लोहे की ब
सङ्कलों के तोड़ने की शक्ति, हस्ती का पांव छाती पर रखने की शक्ति
छाती पर बड़ी शिलाओं को तुड़वाने की शक्ति, मोटर अञ्जन के वे
को रोकने की शक्ति इत्यादिक प्राप्त हुई और लोगों को द्रव्य लेक
दिखाई गई और दिखाई जाती हैं ॥ इसमें कोई आश्चर्य नहीं रहा)॥२

मूलः—प्रवृत्यालोक न्यासात् सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्टज्ञानम् २

अर्थः—अभ्यास में जो प्रवृत्ति उससे, साक्षात्कार द्वारा आलो
जो प्रकाश यानी ज्ञानानुभव है उसके प्रक्षेप से, अर्थात् पढ़ने से यानी
परिक्षा और अनुभव से, सूक्ष्म दूर और नेड़े के विषयों का ज्ञान हो
जाता है ॥ (प्रत्यक्ष बात है कि भौतिक पृथ्वी आदि और अध्यात्मि
चित्तादिक तथा अधिदैविक विद्युत आकाशादिक विषयों में पुनः पुन
विचार से, मन्त्रों द्वारा और विषय के परमाणुओं की शक्तियों के बोध
से, उनके भिन्न २ प्रयोगों द्वारा उनके उत्तम उपयोग से लाभ, और
दुरुपयोग से हानि को जान कर, सूक्ष्म नेडे और दूर के विषयों के ज्ञान
को आधुनिक भूत भौतिक विज्ञानी प्राप्त करते हैं ॥ वे लोग साइन्स
के डाक्टर अर्थात् भौतिक विज्ञान के आचार्य कहलाते हैं ॥ मध्य काल
में लुप्त हुई हुई विद्या का अब यूरूप वालों के उद्योग से आविष्का
हो रहा है ॥ २५ ॥

मूलः—भुवन ज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥ २६ ॥

अर्थः—सूर्य में संयम से सप्त लोक का ज्ञान हो जाता है ॥
(पाश्चात्य विद्वान विचाराभ्यास से सूर्य की शक्तियों के गुण प्रभाव के
ज्ञाता होकर अन्य चन्द्रलोक मङ्गल आदिक के लोकों की खोज करते हैं

और आशा करते हैं कि वहां के समाचार ज्ञात होने के लिये वहां के लोगों से संसर्ग की रीतियां प्राप्त की जायेंगी। ध्रुव की तो यात्रा विज्ञानियों ने वायु यानों द्वारा कर ही ली है) ॥ २६ ॥

मूलः—चन्द्रे तारा व्यूह ज्ञानं ॥ २७ ॥

अर्थः—चन्द्र में संयम से, तारागण के चक्र का ज्ञान होता है ॥२७॥

मूलः—ध्रुवे तद्‌गति ज्ञानम् ॥ २८ ॥

अर्थः—ध्रुव में संयम करने से तारों की गति का ज्ञान होता है॥ ध्रुव को साक्षात्कार करके ही पाश्चात्य विद्वान्, जल यानों में रात्री को भी दिशाओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं और जल यात्रा समाप्त करते हैं॥ Magnetic Compass चुम्बक का दिशा सूचक यन्त्र आविष्कार किया हुआ है ॥ २८ ॥

मूलः—नाभि चक्रे काय व्यूह ज्ञानम् ॥ २९ ॥

अर्थः—नाभि चक्र में संयम करने से, काय व्यूह (चक्र) का ज्ञान होता है ॥ (नाभि में मांस ग्रन्थी पिंडाकार है जिसको नाभी कमल कहते हैं वह सम्पूर्ण नाड़ियों का केन्द्र है यानी वहां सब के मुख मिलते हैं और वे शिर में भी मिलते हैं ॥ नाभि में संयम से चित्त एकाग्र सूक्ष्म हो कर, अन्य नाड़ियों के समुदाय के स्थान जो गुदा मेंढके चक्र, हृदय कमल, भ्रुवों में आज्ञा चक्र, मस्तिष्क में सहस्र दल कमल चक्र इत्यादिक है उनका अनुभव होता है। और नाड़ियों के मुख जो रोम चर्म तक मिलते हैं उन सब की क्रिया का ज्ञान हो जाता है जिससे अपने पर के रोगों की चिकित्सा में सुगमता होती है॥ मृतक शरीर को चीर कर अध्ययन करने से डाक्टर इस ज्ञान को प्राप्त करते हैं ॥२९॥

मूलः—कण्ठ कूपे क्षुत्पिपासा निवृत्तिः॥ ३० ॥

अर्थः—गले की हँसली के मध्य के गढ़े में ठोडी लगा कर आसन पर बैठ कर संयम करने से चित्त एकाग्र होकर भूख की और मुख के जल के स्राव से प्यास की निवृत्ति हो जाती है ॥ ३० ॥

मूलः—कूर्म नाड़ियां स्थैर्यम् ॥ ३१ ॥

अर्थः—छाती में एक कूर्म नाम की नाड़ी होती है, उसमें संयम करने से स्थिरता हो जाती है। गर्दन नीचे करके ध्यान में बैठने से

चित्त स्थिर हो जाना स्वाभाविक है ॥ ३१ ॥

मूलः—मूर्द्ध ज्योतिषि सिद्ध दर्शनम् ॥ ३२ ॥

अर्थः—ब्रह्म रंधर में, जहां शिर में गढा सा बालकों के दृष्ट आता है उसमें ज्योति की भावना से संयम द्वारा सिद्धों का दर्शन होता है ॥ (अभ्यासी इन संस्कारों को रख कर बैठता है कि मुझ को सिद्धों के दर्शन होंगे, तो अवश्य कुछ न कुछ आकार दृष्ट गोचर होंगे अथवा भावना की दृढ़ता से, अन्य नवीन जनों में सिद्धों के दर्शन होसकते हैं जैसे देवता प्रेत पितर आदिक मनुष्यकार होकर उसकी इच्छा पूर्ति की सामग्री प्राप्त कर देते हैं अथवा कोई स्वर्गादिक का प्रलोभ देवें अथवा कार्य करदें, परन्तु विशेषत: अभ्यासी अपने ही भ्रम से मोहित हुए देखे जाते हैं) ॥ ३२ ॥

मूलः—प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥ ३३ ॥

अर्थः—अथवा तारक दिव्य सात्विभाव वा तारक मन्त्र अर्थात् ओंकार में संयम से अर्थात् धारणा ध्यान समाधि द्वारा ॐ के लक्ष्यार्थ परमात्मा के साक्षात्कार करने से, सब का ज्ञान हो जाता है ॥ यह बात ज्ञानियों की अनुभव सिद्ध है और छान्दोग्य उपनिषद में तथा अन्यत्र भी एक के ज्ञान से सब के ज्ञान होने की प्रतिज्ञा है क्योंकि माण्डूक्योपनिषद में यह प्रथम मन्त्र है "ओमित्येतदक्षरमिदंसर्वम्..........." अर्थात् यह सब, ओ३म् इस एक अक्षर रूप है.....इत्यादिक ॥ ३३ ॥

मूलः—हृदये चित्त संवित् ॥ ३४ ॥

अर्थः—हृदय कमल में संयम करने से चित्त का साक्षात्कार होता है ॥ चित्त की वृत्तियों पर दृष्टि दृढ रखते रखते मनुष्य अपने चित्त को जान जाता है यह प्रत्यक्ष है ॥ ३४ ॥

मूलः—सत्व पुरुषयो रत्यन्ता संकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थत्वात्, स्वार्थसंयमात् पुरुष ज्ञानं ॥ ३५ ॥

अर्थः—अत्यन्त भिन्न भिन्न अन्तः करण और पुरुष के प्रत्यय की एकता अर्थात् अभेद—ज्ञान भोग है, पुरुष के अर्थ होने से।

(भोग पुरुष के ही अर्थ हैं मैं पुरुष पृथक द्रष्टा हूँ) ऐसे स्वार्थ में संयम से, प्रत्यय में स्वार्थता का साक्षात्कार होने से (अर्थात् मैं इस भोग का और बुद्धि का द्रष्टा हूँ ज्ञाता हूँ ऐसे अनुभव होने से) पुरुष के स्वरूप का ज्ञान होता है ॥ "विज्ञातारमरे केन विजानीयात् विज्ञातारमरे केन विजानियात" यह बृहदारण्यक उपनिषद की श्रुति हैं, अर्थात् जिस एक से सब को जानता हैं, उस विज्ञाता को किस ज्ञाता से जाने किस उपाय से जाने, यानो, वह अन्य ज्ञान का अविषय स्वयं प्रकाश आत्मा पुरुष है ॥ ३५ ॥

मूलः—ततः प्रातिभ श्रावण वेदनादर्शा स्वादवार्त्ता जायन्ते ॥३६॥

अर्थः—पुरुष के साक्षात्कार से, दिव्य मन, दिव्य श्रोत्र, दिव्य त्वचा, दिव्य चक्षु, दिव्य रसना दिव्य गन्ध उत्पन्न होते हैं ॥ (श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है कि जब सर्व इन्द्रियों से प्रकाश उदय हो यानी उनसे यथावत ज्ञान होता हो तो समझना सत्व की वृद्धि हुई ॥ सत्व से ज्ञान होता है) ॥ ३६ ॥

मूलः—ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥ ३७ ॥

अर्थः—वे दिव्यमनादिक, मोक्ष वाली समाधी में विघ्न हैं और उत्थान काल में सिद्धियां होती हैं ॥ यही पूर्व ३१ के सूत्र में कहा है।३७।

मूलः—बन्ध कारण शैथिल्यात् प्रचार संवेदनाच्च चित्तस्य पर शरीरावेशः ॥ ३८ ॥

अर्थः—बन्ध के कारण जो धर्माधर्म हैं उनके शिथिल यानी न्यून होने से, चित्त के विचरने के मार्ग वाली नाड़ियों के साक्षात्कार होने से, स्वचित्त का पर शरीर में प्रवेश हो जाता है ॥ (आत्मा परिपूर्ण अधिष्ठान रूप वहां भी प्रथम से ही विद्यमान है इस लिए आवेश प्रवेश सम्भव है जैसे देवता वा प्रेत का आवेश प्रवेश होता है तद्वत् जान लेना, परन्तु ढौंग रचना और भ्रम जाल बहुधा सम्भव हो जाता है इसी के पूर्व, सूत्र १६ देखिये ॥ ३८ ॥

मूलः—उदान जयाज्जलपङ्क कण्टकादिष्वसंग उत्क्रान्तिश्च ३९

अर्थः—उदान वायु में संयम द्वारा उसके जय से, जल कीचड़ कण्टक आदिकों में असंग हो जाता है, वे उपद्रव इसको दुःख नहीं दे सकते स्पर्श नहीं करते और उसका ऊर्ध्वगमन अर्थात् ऊपर ही ऊपर गमन होता है ॥ (शरीर की वाय वाह्य कुम्भक वा रेचक द्वारा अत्यन्त हलकी होने से शरीर का आसन ऊपर को उठने को हो जाता है यह सब किसी को अनुभव में आसकता है इसी प्रकार संपूर्ण शरीर के वायू को निकाल कर भीतर के आकाश को कुछ वायू रहित करने से शरीर का ऊपर उठना संभव है जैसे वायू यान और आकाश में उड़ने वाले गोले का होता है जिसके सहारे से भौतिक विज्ञान वाले उड़ते हैं तद्वत् जान लेना) ॥ ३६ ॥

मूलः—समान जयाज्ज्वलनम् ॥ ४० ॥

अर्थः—समान वायू को संयम द्वारा जीतने से शरीर का स्वेच्छा से ज्वलन हो जाता है ॥ शरीर में पूरित संपूर्ण वायू के संघर्ष से अत्यन्त गर्मी उत्पन्न होने से अभ्यासी अत्यन्त ताप के वश जलता है ॥ इसमें सती का उदाहरण वा वियोगी, स्नेही का दृष्टान्त उचित है ॥४०॥

मूलः-श्रोत्राकाशयोः संबंध संयमाद् दिव्यं श्रोत्रम् ॥ ४१ ॥

अर्थः श्रोत्र और आकाश के सम्बन्ध में संयम से (अर्थात् एकाग्रता प्राप्त करने से) दिव्य श्रोत्र हो जाते हैं ॥ (श्रवण की शक्ति बढ़ जाती है सूक्ष्म से सूक्ष्म शब्द दूर तक का सुनाई पड़ने लगता है स्वरों का ज्ञान हो जाता है ॥ शारङ्ग वीणा आदिक के जो स्वर हैं उनको शीघ्र सीखने की क्षमता प्राप्त हो जाती है परन्तु वैसी सामग्री यन्त्रादिक का आविष्कार और प्राप्ती का संयोग भी अवश्य संपादन करना पड़ता है ॥ जैसे तार, टेलीफ़ोन, ग्रामोफ़ोन इत्यादिक यन्त्रों का उपयोग है तद्वत् अन्यत्र भी जान लेना ॥ ४१ ॥

मूलः—कायाकाशयोः संवध संयमाल्लघु तूलसमापत्तेश्चाकाश गमनम् ॥ ४२ ॥

अर्थः—काया और आकाश के संबंध में संयम से और लघु

तूल रूई (या आकाश में उड़ते हुए परमाणु के विचार से) उनमें संयम से आकाश गमन होता है (जैसे गुब्बारा वायु यानादि, देखो सूत्र ३८ की व्याख्या) ॥ ४२ ॥

मूल:—वहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशा वरण क्षयः ॥ ४३ ॥

अर्थ:—शरीर से वाहर, कल्पना रहित हुई अर्थात् स्थिर की हुई वृत्ति, महा विदेहा धारणा है, उससे वुद्धि सत्व के अर्थान् ज्ञान के ढकने वाले तमोगुण का नाश होता है ॥ (तात्पर्य यह है कि शरीर से वाहर किसी चमकदार काली विन्दु पर या काले पत्थर वाले अंगूठी के नग पर अथवा चमकदार चुम्बक मणि पर, त्राटक का अभ्यास दृढ़ करने से निद्रा का और आलस्य का नाश होता है तथा ज्ञान इन्द्रियों की शक्ति प्रतिभाशाली हो जाती है) ॥ ४३ ॥

मूल:- स्थूल स्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थवत्व संयमाद् भूतजयः ॥ ४४ ॥

अर्थ:—स्थूल (अर्थात् पंच भूतों के शब्दादि स्थूल विशेषण में) स्वरूप (अर्थात् पांचों भूतों के स्वरूप-सामान्य जैसे आकाश की व्यापकतामें, अग्नि की उष्णता में) सूक्ष्म (अर्थात् ५ तन्मात्रा शब्दा-दि विषय में) अन्वय (अर्थात् उनके सम्बन्ध में) अर्थवत्व (यानी उनके उपयोग और सार्थकता में) संयम से (पूर्ण गवेषणा से observation and experiment से) भूतों का जय होता है ॥ यही सम्पूर्ण साइन्स यानी पाश्चात्य भौतिक विज्ञान का विषय है जिससे यूरूप महान शक्ति शाली हो रहा हैं) ॥ ४४ ॥

मूल:—ततो अणिमादि प्रादुर्भावः काय संपत् तद्धर्मान-भिघातश्च ॥ ४५ ॥

अर्थ:—भूत जय से अणिमादि का प्रादुर्भाव होता है काय सम्पत होता है अर्थात् शरोर के अन्तर्द्धान की शक्ति आदि का उदय होता हैं दिव्य मन इन्द्रिय होते हैं और भूतों के धर्मों से अभिघात अर्थात् पीड़ित नहीं होता ॥ (आज कल वैज्ञानिक आविष्कार वाले

आकाश में अप्रतिहत वेग से उड़ते हैं, वायु के वेग से रुकावट नहीं पाते, वायु गैस (gases) से कार्य लेते हैं जैसे Hydrogen Carbonic acid gases etc. हाइड्रोजन आदि से काम लिया जाता है। अग्नि से जल से इन के सम्बन्ध से अञ्जन चलते हैं, बिजली उत्पन्न होती हैं, बिना तार के समाचार पहुंचाये जाते हैं पानी में जल मग्न यानी नौकायें डूबी रहती हैं, अग्नि अस्त्रों से काम लिया जाता है प्रकाश का कार्य लिया जाता है बड़ी बड़ी शक्ति शाली शिल्प के कार्य होते हैं और सब भूतों के विघ्नों के उपाय साथ साथ हैं यह सब विज्ञान के आविष्कार हैं) ॥ ४५ ॥

मूलः-रूप लावण्य बल वज्र संहननत्वानि काय सम्पत् ॥ ४६ ॥

अर्थः—दिव्य रूप, सौन्दर्य, बल वज्रवत् दृढ़ अङ्गता होनी यह सब काय सम्पत है ॥ (यूरुप जापान अमरीका वालों का रूप सौन्दर्य, बल (दीर्घ आयुष) शरीर की पुष्टि स्पष्ट देखने में आरही है ॥ राज के आश्रित विज्ञान के आविष्कारों से सब कृषिक तथा वणिक विदेशों में सुखी हैं, बिना राज्य की पूर्ण सहायता के भारत दरिद्रता और दुःखों का केन्द्र, सब से निर्बल, रोगी और दुखी है बहुधा जनता दुर्बल, बुद्धि हीन हो रही है भूखों मर रही है, और बच्चों की मृत्यु सर्व देशों से अधिक है) ॥ ४६ ॥

मूलः—ग्रहण स्वरूपा स्मिता न्वयार्थवत्व संयमा दिन्द्रिय जयः ॥ ४७ ॥

अर्थः—ग्रहण अर्थात् इन्द्रियों की वृति, स्वरूप अर्थात उन के सामान्य व्यापार अस्मिता अर्थात अहंकार, अन्वय अर्थात सत्वादि गुणों से सम्बन्ध और अर्थवत्व अर्थात् भोगापवर्ग के वास्ते सप्रयोजनता, इन सब में, संयम से, इन्द्रियों का जय होता है ॥ आत्मिक बल के लिए यह आत्म संयम योग सब विवेकियों को प्रसिद्ध है ॥ ४७ ॥

मूल—ततो मनो जवित्वं विकरणभावः प्रधान जयश्च ॥ ४८ ॥

अर्थः—इन्द्रिय जय से. मन के समान वेग, इन्द्रियों का

अप्रतिबद्ध शक्ति लाभ, और प्रधान का जय होता है ॥ (अर्थात प्रकृति जन्य विघ्न बाधाओ से रहित रहता है)॥ यहां तक गृहस्थ सकाम योगी के लिये विभूतियों और उनकी प्राप्ति के उपायों को कहा अब निष्काम योगी के लिये कैवल्य पद प्राप्ति के वास्ते उसी संयम के उपयोग को कहते हैं ॥ ४८ ॥

मूलः—सत्व पुरुषान्यता ख्याति मात्रस्य सर्व भावाधिष्ठातृत्वं सर्वं ज्ञातृत्वं च ॥ ४९ ॥

अर्थः—सत्व जो बुद्धि उसके और पुरुष के विवेक से पृथक पुरुष और दृश्य के साक्षात्कार मात्र वाले योगी को (मात्र शब्द से निष्कामता ग्रहण करना) सर्व भावों की स्वामिता और सर्वज्ञता प्राप्त होती है ॥ पुरुष सदा सत्व से यानी बुद्धि दृश्य वा प्रधान और उस के कार्य संसार से भिन्न है। पुरुष सत्य है, असङ्ग है, शुद्ध है निर्विकार है अलिप्त है और सदा स्वरूप में स्थित है, उस से इतर दृश्य कल्पित अनात्मा अविद्या और उसका कार्य पुरुष के लिये था अब मुमुक्षु पुरुष को उसकी आवश्यकता नहीं है इस लिये पर वैराग से त्याज्य है निरुद्ध करने योग्य है प्रशान्त वाही संस्कार मात्र से विलीन करने योग्य है ॥ ऐसा साक्षात्कार होने से पुरुष आप अपनी सम्पूर्ण अविद्या और उस के कार्य दृश्य का बाध करके उस को विपर्यय मात्र समझ कर अपनी कल्पना और विकल्पों का आप अधिष्ठान रहता है और सर्व दृश्य को अनात्मा दुःख हेय अशुचि असत्य जान कर निरोध करके शेष आप सर्व का अधिष्ठान स्वरूप चिति शक्ति वा पुरुष अपने स्वरूप को केवल यानी निर्द्वंद्व समझता है यह ही सर्वज्ञता है ॥ ४९ ॥

मूलः—तद्वैराग्यादपि दोष बीजक्षये कैवल्यम् ॥ ५० ॥

अर्थः—उस सर्व के स्वामित्व और सर्वज्ञता में भी वैराग से (कि मुझे इस चिन्तन की भी क्या आवश्यकता है केवल चिति है सो है) दोष के बीज (अविद्या यानी वासना वा संस्कार) का क्षय होने से कैवल्य प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

टीका:—पुरुष का सत्वादिगुणों से आत्यन्तिक वियोग होना कैवल्य है, तब चिति शक्ति पुरुष ही स्वरुप में स्थित है ॥ (यह बात विचार करने योग्य है कि यदि पुरुष से इतर कल्पना दृश्य बुद्धि वा प्रधान गुणादि अथवा उनका संयोग सत्य हो तो अकारण ही आत्मा की असंगता शुद्धता मानना होगी इतना जानलेने मात्र से किसी का कैवल्य नहीं होगा क्योंकि सम्बन्ध छूटता नहीं दिखाई देता ॥ यदि आत्मा पुरुष स्वरूप से केवल है और अकैवल्य आगुन्तुक अविद्या जन्य है तब विवेक से अकैवल्य अर्थात दृश्य और कल्पित संयोग सम्बंध को मिथ्या असत्य जानने से, शेष पुरुष, कैवल्य भाव को ही प्राप्त होगा, ॥ विपर्यय ज्ञान वासना से नामरूप आकार नानत्व और भोगादिक दृश्य दृष्ट आते थे अब अविद्या रहित चिति शक्ति और शक्ति का चमत्कारिक विस्तार विचार गोचर होने से आपही पुरुष चिति है यही कैवल्य है) ॥ ५० ॥

मूल:—स्थान्युपमन्त्रणे संगस्मयाकरणं पुनरनिष्ट प्रसंगात् ॥ ५१ ॥

अर्थ:—स्थानि अर्थात् देवताओं के निमन्त्रण से आसक्ति और गर्व नहीं करना, क्योंकि पुनः अनिष्ट का प्रसंग होगा ॥ अभ्यास छूट जावेगा चित्त वहिर्मुख हो जावेगा यह अनिष्ट है ॥ (मान पूजा प्रतिष्ठा विभूति पूर्वक सती सेवक आदि के रूप में ही देवता इसका पतन कराते हैं ॥ सकाम पुरुष सदा लाभ वश दुखी होता है इस लिये निष्काम रहना उचित है मूढता से अहंकार के वश होना उचित नहीं है यह समाधि में विघ्न है)

टीका:—देवताओं के लौकिक जनता के रूप में अथवा सती सेवकों के रूप में सन्मान पूजा विभूति अर्पण द्वारा आकर्षण करने पर, सावधान होकर अहंकार गर्वादि को त्याग कर मुमुक्षु योगी ने यह विचार करना चाहिये :-

प्यारे, संसार रूपी अंगारों में पकते हुये, जन्म मरण अन्धकार में भटकते हुए, मुझ योगीने किसी प्रकार ईश्वरानुग्रह से क्लेश और

अविद्या अन्धकार को नाश करने वाला योग का दीपक जलाया है ॥ उस ज्ञान प्रकाश वाले योग रूपी दीपक के यह तृष्णा-मूलक विषय-पदार्थ विरोधी हैं यानी इसको बुझाने वाले हैं, सो भला मैं जो विवेक ज्ञान प्रकाश को प्राप्त हुवा योगी हूँ मुझे इन से क्या ? मैं क्यों इन तृष्णा वाले विषय भोगों से ठगा जाऊं ? ॥ हे देवता गणो सिद्धगणो ! आप का कल्याण हो, यह स्वप्न के सदृश मिथ्या भोग कृपण जनों से प्रार्थनीय और उन दीन कृपण जनों को प्राप्त होने वाले विषय, आप ही के पास रहें, इस प्रकार निश्चित मति होकर समाधि में ही भावना युक्त हो रहे, उन में राग करके गर्वादिक न करे ॥ (अब देखिये यदि वे देवता केवल इसके कल्पना या भावना का ही कार्य न होते तो इसके चित्त में कहां से आते, बस ऐसी ही प्रतिभासिक सत्ता योग के भाष्यकार व्यास भगवान को दृष्य में इष्ट है)। योग का मत वेद मत के अनुसार लगाना योग्य है भ्रम में न पड़ना चाहिए अन्यथा, शास्त्र अप्रमाणिक हो जावेगा ॥ ५१ ॥

मूलः—क्षण तत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५२ ॥

अर्थः—क्षण और क्षण के क्रम में संयम से विवेकज ज्ञान अर्थात् तारक ज्ञान होना है ॥ क्षण क्षण सावधानता पूर्वक वृत्ति वृत्ति का साक्षी अपने स्वरूप पुरुष को जानते हुये (विपर्यय रूप सादृय के निरोध पूर्वक) विवेक जन्य आत्म ज्ञान होता है यह भाव है) ॥ ५२ ॥

मूलः—जाति लक्षण देशैरन्यतानवच्छेदात् तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ॥ ५३ ॥

अर्थः—जाति से, लक्षण से, देश से, एकी हुये हुये पदार्थों के भेद का निश्चय न होने से, उस विवेक ज्ञान से, उनके भेद का निश्चय हो जाता है ॥ (विवेक जन्य ज्ञान से यह निश्चय होना आवश्यक ही है कि बुद्धि दृष्य का द्रष्टा पुरुष चिति शक्ति नित्य असंग कूटस्थ है, बुद्धि दृष्य विपर्यय रूप है वह ही कैवल्य है) ॥ ५३ ॥

मूलः—तारकं सर्व विषयं सर्वथा विषयमक्रमंचेति विवेकजं

ज्ञानं ॥ ५४ ॥

अर्थः—तारक ज्ञान अर्थात् चिति शक्ति पुरुष का स्वरूप कैवल्य ज्ञान, सर्व को विषय करने वाला (अर्थात् सब का स्वामी वस्तुतः असंग) सर्व प्रकार से विषयों को जानने वाला (अर्थात् विपर्यय विकल्प रूप दृश्य का द्रष्टा) और अक्रम अर्थात् एक क्षण में सब का ग्रहण करने वाला (अर्थात् सर्व भेद विनिर्मुक्त सब रूप में एक असँग पुरुष हूँ ऐसे, जानने वाला) होता है यह विवेकज ज्ञान है।

टीकाः—तारक का अर्थ है स्वयं प्रकाश ज्ञान जो किसी के उपदेश कथन का विषय नहीं है (अर्थात् पुरुष का स्वरूप ज्ञान) ॥५४॥

मूलः—सत्व पुरुषयोः शुद्धि साम्ये कैवल्यम् ॥ ५५ ॥

अर्थः—सत्व अर्थात बुद्धि और पुरुष की यानी दोनों की शुद्धि समता के होने से कैवल्य ज्ञान होता है ॥ (विचार से आविद्यक भेद दृश्य की कल्पना के निवृत्ति होने से, बुद्धि का बाध होकर असद् भाव निश्चय होकर उसकी दृष्टा चिति में एकता होती है क्योंकि चिति से इतर कुछ रहा हो नहीं, अशुद्धि रूप विपर्यय की निवृत्ति अधिष्ठान चिद् रूपही है यही शुद्धि साम्य है ॥ एक अद्वैत सत् ही था इस श्रुति उपदिष्ट ज्ञान से द्वैत कार्य का वाणी का आरंभ नाम मात्र सिद्ध होने से, सब सत्ता मात्र एक अद्वैत सत ही था है और रहेगा यह निश्चय शुद्धि साम्य ही है ऐसा ज्ञातव्य है यह छान्दोग्य उपनिषद में निर्णय किया है)

टीकाः—जब रज तम मल से रहित बुद्धि, पुरुष के साथ, अभेद ज्ञान के अधिकार को प्राप्त होकर, क्लेश बीज की दग्धता होती है तब पुरुष के आगुन्तुक कल्पना रूप भोगों का अभाव हो जाता है यही शुद्धि है, इसी अवस्था में कैवल्य होता है ॥ ईश्वर रूप हो अथवा अनीश्वर हो विवेकज ज्ञान का भागी हो वां दूसरा ही कोई हो जिसके क्लेश के बीज रूप अविद्या दग्ध हो चुकी उसे फिर ज्ञान की अपेक्षा कुछ नहीं रहती है ॥ बुद्धि की शुद्धि द्वारा वह समाधि जन्य ऐश्वर्य, और ज्ञान से अज्ञान निवृत्त हो जाता है उसके निवृत्त होने पर पीछे अविद्यादिक क्लेश नहीं रहते हैं, क्लेश के न रहने से, कर्म फल का अभाव हो

जाता है, भोग का अधिकार समाप्त हो जाता है और इस अवस्था में सत्वादि गुण फिर पुरुष के दृश्य हो कर नहीं स्थित रह सकते हैं, वही पुरुष का कैवल्य है, तब पुरुष स्वरूप मात्र ज्योति अर्थात् स्वयं प्रकाश चिति अमल अर्थात् अविद्यादि मल रहित असंग केवली रहता है ॥५५॥

(पूर्वोक्त तृतीय विभूति पाद के भी निरूपण में योग शास्त्र का तात्पर्य्य, सकामता और भोग लालसा की निवृत्ति पूर्वक विवेकज ज्ञान द्वारा कैवल्य परमपद में ही है यह निश्चय हुवा ॥ सिद्धों का दर्शन तथा भोग प्राप्ति विघ्न रूप हैं और कैवल्य प्राप्ति में आवश्यक नहीं हैं प्राप्त हो जावें तो अनादर के योग्य है तब विवेकज ज्ञान द्वारा कैवल्य मोक्ष होता है अन्यथा नहीं होता) ॥ इत्योम

* श्री मङ्गल मूर्त्तये नमः *

अथ श्री पातञ्जल योगदर्शन चतुर्थ पादः

अब चतुर्थ पाद में भी कुछ सिद्धियों का कारण निरूपण करके पीछे कैवल्य पद की प्राप्ति के कथन द्वाराग्रंथ को समाप्त करते हैं ॥

मूलः—जन्म औषधि मन्त्र तपः समाधि जाः सिद्धयः ॥ १ ॥

अर्थः—जन्म से ही (पक्षियों के आकाश गमन वत् मछलियों की जलमग्नता वत्) औषधि से (पीडा रोग निवृत्ति वत्) मन्त्र से (सर्पदंश के विष की निवृत्ति वत्) तप से (राज्यादि प्राप्ति वत्) और समाधि से जन्य सिद्धियां (प्रति बन्धक की उस उस निमित्त से निवृत्ति होने पर) प्राप्त होती हैं ॥ (अहल्या के पाषण

भाव की निवृत्ति नहुष के अजगर भाव की निवृत्ति शास्त्र में प्रसिद्ध हैं)॥ तात्पर्य यह समझना कि सब जीवों में जो कुछ न कुछ विशेष सामर्थ्य वाली सिद्धियां हैं वे सब प्रथम की समाधियों के फल हैं, जिन सिद्धियों रूप फल का होना किसी न किसी निमित्त से प्रतिबद्ध था उन प्रतिबन्धकों के निवृत्त होने पर, वे सिद्धियां चाहे पशु शरीर में वा पक्षी त्रियगादि शरीर में हों, वा मनुष्य शरीर में ही ह… उपाय से हों वा अदृष्ट का फल हों, प्रगट होती रहती हैं ॥ इससे यह प्रसिद्ध हुआ कि सिद्धियां होना आत्मज्ञानी के लिये आत्म ज्ञान प्राप्ति में आवश्यक नहीं हैं न यह सिद्धियां ज्ञानी के लिये कुछ अपूर्वता है न इन के बिना आत्म ज्ञान प्राप्ति में कुछ बाधा उपस्थित होती है क्योंकि ज्ञान तो विचार के आधीन है और सिद्धियां तप रूप उपाय और क्रिया के आधीन हैं जो जैसा उपाय करता है वैसा फल पाता है यह वाल्मीकीय महारामायण में निर्णय कर दिया है ॥)

मूलः—जात्यन्तर परिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥ २ ॥

अर्थ=प्रकृति के सर्वाकार परिणाम से जात्यन्तर परिणाम होता है (जैसे मृत्तिका से घट, तूल से पट, इत्यादिक) ॥ कारण के अवयवों का कार्य के अवयवों में प्रवेश होना प्रकृति का आपूर है ॥ २ ॥

मूलः—निमित्त मप्रयोजकं प्रकृतीनां वरण भेदस्तु ततः क्षेत्रिक वत् ॥ ३ ॥

अर्थः—धर्माधर्मादि निमित्त, प्रकृतियों का प्रवर्तक नहीं है, प्रकृतियों के प्रतिबन्धक की निवृत्ति तो धर्माधर्मादि निमित्त से होती है, जैसे किसान की प्रवृत्ति इतनी ही है कि मिट्टी को नाली के आकार निकाल कर फेंक दे, जल स्वयं नाली के आकार हो जाता हैं उस में किसान प्रवर्तक नहीं है इसी प्रकार धर्माधर्म निमित्त, प्रतिबन्धक की निवृत्ति द्वारा, प्रकृतियों के योनि आदिक परिणाम में प्रयोजक है ॥ ३ ॥

मूलः—निर्माण चित्तान्यस्मिता मात्रात् ॥ ४ ॥

अर्थ—योगी के रचे हुए चित्त (कई शरीरों को यदि धारण

किया हो तो एक ही समय में) उसके अहंकार से उत्पन्न होते हैं यथा (आचार्यों के अनुयायी) ॥ ४ ॥

मूलः—प्रवृत्ति भेदे प्रयोजकं चित्त मेक मनेकेषां ॥ ५ ॥

अर्थः—अनेक चित्तों के प्रवृत्ति के भेद का प्रेरक एक नायक चित्त योगी रचता है (जैसे समर्थ नेता आचार्यादिक होते हैं तद्वत्)॥५॥

मूलः—तत्रध्यान जमनाशयम् ॥ ६ ॥

अर्थः—तत्र=उन चित्तों में से ॥ ध्यानजं अनाशयं=केवल समाधि वाला चित्त अनाशय होता है अर्थात मोक्ष प्रतिबंधक संसार बीज से रहित होता है ॥ ६ ॥

मूलः—कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषां ॥ ७ ॥

अर्थः—योगी का अशुक्लअकृष्ण कर्म (पुण्य पाप रहित) होता है अन्य अयोगियों का कर्म तीन प्रकार का (पुण्य, वा पाप, वा मिला हुवा, होता है) ॥ ७ ॥

मूलः—ततः [illegible] द्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानां ॥८

ततः=उन त्रिविध कर्मों से ॥ तद्विपाकानुगुणांवासनानां अभिव्यक्तिः=उन कर्मों के फल (जाति आयू भोग) के अनुसार, वासनाओं का उदय होता है ॥ ८ ॥

मूलः—जाति देशकाल व्यवहितानामप्यानन्तर्य्यं स्मृति संस्कारयोरेकरूपत्वात् ॥ ९ ॥

अर्थः-(जाति देश और काल)के भेद से वासनाओं का भी भेद होता है स्मृति और संस्कारों को एक रूप होने से ॥ एक शरीर में सब योनियों के संस्कार रहते हैं जो पूर्व से संग्रहीत हैं उन ही से इस योनी की अभिव्यक्ति होती है क्यों कि धर्माधर्म निमित्त से जैसी २ रुकावट दूर होती है वैसी २ फल प्रदान करने वाली योनी होती रहती है ॥ ९ ॥

मूलः—तासा मनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ॥ १० ॥

अर्थः—उन वासनाओं की अनादि रूपता है "मुझे सदा सुख रहें

दुःख कभी न हो ऐसी" आशीष अर्थात् प्रार्थना को सर्वदा बनी रहने से ॥ १० ॥

मूलः—हेतु फलाश्रया लम्बनैः संग्रहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥ ११ ॥

अर्थः—वासनाओं के हेतु जो क्लेशादिक, तथा फल जो जाति आयू भोग तथा आश्रय जो चित्त और आलम्बन जो विषय इन के संचित होने से (इन चारों के एकत्र होने से वासना होती हैं) इनका अभाव होने पर वासनाओं का अभाव हो जाता है ॥ ११ ॥

मूलः—अतीतानागतं स्वरूपतो ऽस्त्यध्व भेदाद्धर्माणाम् ॥ १२ ॥

अर्थः—अतीत अनागत वस्तु स्वरूप से होती हैं, धर्मों के अध्व अर्थात् काल के भेद से। (नष्ट हुई वा होने वालीं वस्तु काय रूप से न सही परन्तु स्वरूप से विद्यमान रहती हैं कहीं नहीं जा सकती हैं, काल भेद से धर्मों की आकृति मात्र के भेद होते रहते हैं, जैसे पूर्व मृत्तिका पीछे घट पीछे कपाल, पीछे परमाणु, मृतिका चूर्ण रूप से होकर पुनः उसी प्रकार परिवर्तन मात्र होता है वस्तु रूप मृत्तिकादि कही नहीं जा सकते,) ॥ १२ ॥

मूलः—ते व्यक्त सूक्ष्मा गुणात्मानः ॥ १३ ॥

अर्थः—वे धर्म वर्तमान में तो व्यक्त, और भूत भविष्यत काल की दृष्टि से अव्यक्त, सूक्ष्म रहते हुए तीनों गुणों का ही आकार हैं ॥१३॥

मूलः—परिणामैकत्वाद्वस्तु तत्त्वम् ॥ १४ ॥

अर्थः—परिणामों के एकत्व होने से वस्तु का स्वरूप बनता है (जैसे जूड़ा वस्तु होकर दिखाई देता है परन्तु भिन्न २ प्रथक हुए केश की दृष्टि से जूड़ा कुछ नहीं दिखाई देता है, तद्वत् सर्वत्र अनात्म वर्ग में जान लेना) ॥ १४ ॥

मूलः—वस्तु साम्ये चित्त भेदात्तयो र्विभक्तः पन्थाः ॥ १५ ॥

अर्थः—वस्तु समान होने पर भी, चित्तों के भेद से उस वस्तु और चित्त के जुदे २ मार्ग हैं। (जैसे एक ही स्त्री में भिन्न भिन्न चित्त

के भेद से भिन्न २ भाव हैं तद्वत् सर्वत्र जानना) ज्ञानीको "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" हैं और वही अज्ञानी के लिए "तन्नामरूपाभ्यां व्याक्रियते" इति श्रुतिः ॥ १५ ॥

मूलः—न चैक चित्त तन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ॥ १६ ॥

अर्थः—वस्तु एक चित्त के ही आधीन नहीं है, वह वस्तु यदि (सुषुप्ति आदिक अवस्था में) अप्रमाणिक हो जावे, तब क्या होगा अर्थात् क्या वस्तु का अभाव हो जावेगा ? ॥ १६ ॥

मूलः—तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्यवस्तु ज्ञाताज्ञतं ॥१७॥

अर्थः—चित्तस्य तद् उपरागापेक्षित्वात्=चित्त को वस्तु के समानाकारता की अपेक्षा वाला होने से ॥ वस्तु ज्ञाताज्ञातम्=वस्तु ज्ञात होती और अज्ञात होती है ॥ (यदि चित्त विषयाकार है तो वस्तु ज्ञात है नहीं है तो अज्ञात है इससे चित का परिणामी होना सिद्ध हुआ)।१७।

मूलः—सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्या परिणामित्वात् ॥ १८ ॥

अर्थः—चित्त की वृत्तियां सदा ज्ञात होती हैं सदा उसके स्वामी पुरुष के अपरिणामी कूटस्थ होने से ॥ (इससे पुरुष को असङ्ग कूटस्थ कहा) ॥ १८ ॥

मूलः—न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥ १९ ॥

अर्थः—वह चित्त स्वयं प्रकाश नहीं है दृश्य रूप होने से ॥ १९ ॥

मूलः—एक समये चोभयानवधारणम् ॥ २० ॥

अर्थः—दो वृत्तिज्ञान एक काल में नहीं रह सकते हैं, एक समय में दो चित्तों का या दो विषयों का अवधारण नहीं हो सकता है ॥ २० ॥

मूलः—चित्तान्तरदृश्ये बुद्धि बुद्धे रति प्रसङ्गःस्मृति सङ्करश्च ॥२१॥

अर्थः—यदि एक चित्त को दूसरा चित्त दृश्य मान लें तो एक बुद्धि को दूसरी बुद्धि का विषय होने से अति प्रसंग दोष हो जावेग

और स्मृतियों का संकर या मिश्रण हो जावेगा तथा बहुत संस्कारों का मिश्रण होने से यह ज्ञात न होगा कि कौन संस्कार किस बुद्धि के हैं यह दोष हैं। इस कथन का पिछले पाद के ७६ वें सूत्र से विरोध है जिसमें परिच्छिन्न ज्ञान सिद्धी कही है।

यदि कोई कहे कि एक ही समय कई ज्ञान होते प्रतीत होते हैं तो उसका योगी उत्तर देते हैं कि काल के अति सूक्ष्म भेद होने से भिन्न भिन्न चित्त और उनके प्रथक २ ज्ञान जुदा जुदा हैं परन्तु जान नहों पड़ते हैं जैसे एक सूई एक काल में सौ कमल पत्तों का छेदन करती दृष्ट आती है परन्तु सब का काल भिन्न भिन्न हैं तद्वत् जान लेना। वेदान्त की दृष्टि से तो आविद्यक अध्यास की महिमा इतनी विचित्र है कि एक ही क्षण में इस सब अनन्त सृष्टि की एक साथ कल्पना हो जाती है और क्षण में नष्ट हो जाती है (इस लिए पूर्वोक्त योग की कल्पना स्थूल व्यवहार की दृष्टि से है) क्यों कि यदि संसार की स्थिती लगातार तीन क्षण भी मान लें तो संसार त्रिकालाबाध सत्य हो जावेगा मिथ्या न होगा, इस लिए एक अधिष्ठान में अध्यस्त अनन्त वृत्ति ज्ञान एक क्षण में ही हो सकते हैं यह वेदान्त का मत है॥ क्षण भर में ही दीर्घ काल का भ्रम होता रहता है॥ २१॥

मूलः—चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम्॥ २२॥

अर्थः—अपरिणामि चिति शक्ति के, बुद्धि के समानाकार आरोप होने से, अपनी भोग्य बुद्धि का ज्ञान होता है।

(यदि आरोप होना न मानें तो चिति शक्ति कूटस्थ न रहेगी)

टीकाः—आचार्य ने कहा हैः— ब्रह्म न पाताल में है न पहाड़ों की कन्दरा में, अन्धकार में न समुद्रों में है, जिसकी गुहा में शाश्वत ब्रह्म गुह्य है वह बुद्धि की वृत्ति है उसमें ही समान एक रस, वृत्ति वृत्ति का साक्षि विराजमान हैं ऐसा विद्वान जानते हैं॥ २२॥

मूलः—द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम्॥ २३॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ

श्री शिव कीर्तन

—: भजनावली :—

रचयिता

पं० कैलासपति चतुर्वेदी "कमल"

मु० रोहिआ पो० वगाढी जि० आरा

प्रकाशक

श्री शिव भक्त मण्डल

पुस्तक मिलने का पता :-

शिवनारायण
रामनारायण एण्ड को०
नं० ३, बड़तल्ला स्ट्रीट,
कलकत्ता-७ ।

फोन नं० ३३-३५४१

मूल्य

भगवत् प्रेम

श्रीगणेशाय नमः

—: निवेदन :—

ॐ
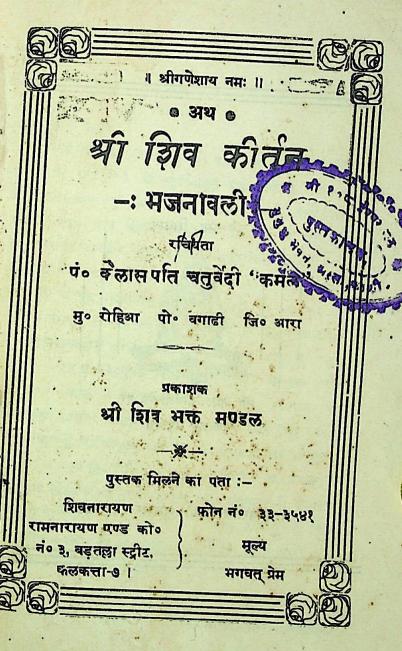
ॠ ब्रह्म मूल शिव नाम भजो मनुष्यों
जाते कहाँ भटकते भव जाल में हो॥
होगा वही करुणया शिव जो करेगा
मिथ्या प्रलोभन फँसे किस चाल में हो॥१॥
विज्ञान ज्ञान दुनियाँ भर को सिखाता
है बोध की अति अगाध पयोधि वाला॥
मृत्युञ्जयी जगत का गुरुदेव भी है
सन्ताप ताप परिमार्जक नाम भोला॥२॥
शृङ्गार शब्द रचि काव्य कला बनाते
जाते गिरे गहन कर्म विपाक में हो॥
होती कभी विजय नश्वर शब्द की भी
क्या भ्रान्ति ही निज कपाल बसा लिए हो॥३॥
गौरीश! ईश! जगदीश्वर दीनबन्धो॥
आनन्द मंगल महाजग के विधाता
हे देव! रक्ष, मन रे कहता न तू क्यों
क्या ढूँढ़ता गहन में कुछ भी न पाता॥४॥

निवेदक :—

कैलाश "कमल"

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

* अथ *

* श्री शिव कीर्त्तन *

—: भजनावली :—

—:○:०:○:—

(१)

जै गणेश करुणायतन, करहु दीन पर छोह
शिव पद भक्ति देहु मोहि, हरहु विघ्न दुख द्रोह ॥१॥

एक दिन चतुर्दशी की रात को "सभी प्राणियों में निद्रा रूप से निवास करने वाली" भगवती (पराम्बाशक्ति) मोह रूपी निद्रा में मग्न थी। सवेरे सोमवती अमावश्या होने वाली थी। श्री भोलानाथ उस रात्रि को ध्यानावस्थ होकर अपने भक्तों की दिनचर्या का स्मरण कर रहे थे। इसी समय पवन ने भगवान शङ्कर जी को प्रभात आरम्भ होने की सूचना दिया। श्री शिवजी का ध्यान टूटा तो उन्होंने देखा।

(२)

रजनि के युगयामहिं शेष थे
अरुण था गगनाङ्कल में छिपा
नहिं दिवाकर और न थी वहाँ
कुमुदिनी मुद मोदन की कला ॥१॥

शुचि प्रभात प्रभा तम चीरती
अरुणचूर-चमूर जगे सभी
स्मरति नाम शिवाधि मनोरमा
विटप कोटि नवाङ्कुर पै कभी ॥२॥

चुहचुहा उठतीं चिड़ियाँ सभी
विकल ताक लता नहिं दीखती
तिमिर जोर अँजोर बिना पड़ी
निरजिनी रजनी रजकी हती ॥३॥

तब उठे शिव अष्टम याम में
नयन खोल दिये शशि सूर्य सा
अति प्रकाश हुआ शिव धाम में
पर न दीख पड़ी गिरि वर्यजा ॥४॥

जुट गये शिव पूजन देवता
"कमल" पुष्प लिए जल गंगका
तब पुकार कहे शिव शक्ति से
उठ प्रिये कर साधन भंगका ॥५॥

—:o:—

(३)

"उठो हे गौरा, हो गई भांग की वेला"

मन्द सुगन्ध पवन जँह डोलत
"कमल" खिला अलवेला (उठो०) ॥१॥

ब्रह्मा जी आ गये विष्णुजी आ गये
द्वारे तुमारे लागी मेला (उठो०) ॥२॥

इन्द्रादिक सुर सिद्ध पधारे हैं
दरश लिए करैं हेला (उठो०) ॥३॥

वीणा लिए नारद मुनि आ गये
भारी मची है झमेला (उठो०) ॥४॥

कुण्डी कहां गई सोटा कहां गया
कँह गया भांग का झोला (उठो०) ॥२॥

गंगा भी आगई जमुना भी आगई
तेरे बिना मैं अकेला—(उठो०) ॥६॥

दास "कैलास" की मोह निशा गई
अब नाहीं सोने की बेला (उठो०) ॥७॥

❋ ❋ ❋

(४)
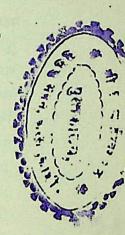
महादेव परमातमा विश्व भर्ता
तुही विष्णु ब्रह्मा पिता सृष्टि कर्ता ॥१॥
समाधिस्थ हो देखते लोक लीला
सदानन्द की माधुरी के रसीला ॥२॥
निराकार विज्ञान दानी महात्मा
प्रभो मूलऔंकार के आप आत्मा ॥३॥
जगत्सृष्टि कर्त्री कला के विधाता
महा शक्ति तेरी उमा विश्वमाता ॥४॥
निराकार से नाद औ बिन्दु होते
तदाकार साकार में बीज बोते ॥५॥
स्वयं बीज आत्मा हुए सूत्र शाखा
न बीजाङ्कुरों में जरा भेद राखा ॥६॥
हुआ क्षेत्र संसार शाखा वही है
प्रभो आप छेत्रज्ञ दूजा नहीं है ॥७॥
नहीं भेद है जो वही भेद भारी
हुए आप ही वेद औ ब्रह्मचारी ॥८॥
कालातीत हैं आप "कैलास" वासी
सभी का हृदय आपकी दीव्य काशी ॥९॥
दया दीन पै आप करते सदा ही
प्रभो पुत्र मैं भी तो हूं आपका ही ॥१०॥

* * *

(५)

देखन में वड़े सुकुमार शङ्कर भोले भाले ॥१॥

गोरे गोरे अंग पर भसमी विराजे भोला
चमकत चन्द्रमा लिलार शंकर भोले भाले ॥२॥

सुर नर नाग असुर मुनियों के—बावा
सवसे वड़े हैं सरदार शंकर भोले भाले ॥३॥

भूरी सी जटा विच गंगा विराजे भोला
नैना हैं तीनों रतनार शंकर भोले भाले ॥४॥

भक्तों को दीन्हें प्रभुजी अनधन सोना शंकर
अपने लगाये नाग हार शंकर भोले भाले ॥५॥

काहू को तो योग दीन्हें काहू को तो भोग भोला
वड़े वड़े पापी दिये तार शङ्कर भोले भाले ॥६॥

सवकी कि वारी वड़े दानी कहाये बावा
अब की है वारी हमार शङ्कर भोले भाले ॥७॥

दास "कैलास" की अरजी यही है भोला
आगे है मरजी तोहार शङ्कर भोले भाले ॥८॥

(६)

विनतिया यही, सुन लीजै महाराजा ॥१॥

— ०— -

भुवन चतुर्दश नयन पञ्च दश
देखत कर्म सबहि का सर्वस
निज जन जानि हरत हर हिय की
मोह जनित आरतिया सही (सुन०) ॥२॥

दशहुं दिशा दश श्रवन बिराजे
कुण्डल तड़ित तार छवि राजे
गगन सघन जन युक्त योग से
जानत प्रतिमन गतिआ सही (सुन०) ॥३॥

पञ्चमुखी पञ्चायत में सम
देते सब को न्याय सुने हम
हम अपराधी क्षमा चाहते
छोटी सी मेरी बतिआ यही (सुन०) ॥४॥

त्रिभुवन में दोनी महान विभु
क्षमादान है महादान प्रभु
आश किया "कैलास" आपकी
औरन कीना सँगतिआ रही (सुन०) ॥५॥

❀ ❀ ❀

(७)

अकेले दिल में भगवन् आपकी हम याद करते हैं
प्रभो हम आप ही से प्रेम की फरियाद करते हैं ॥१॥
न था तन जन्म से पहिले न मरने पर रहेगा यह
बना के चन्द दिन में आप ही बरबाद करते हैं ॥२॥
पड़ा है देह मरघट में न होता शब्द मुख से क्यों
इसी से सिद्ध है कि आप ही सम्वाद करते हैं ॥३॥
यही तन क्षेत्र, इसमें ज्ञान हीरा सा उपजता है
इसे क्षेत्रज्ञ बन कर आप ही आवाद करते हैं ॥४॥
प्रभो यह देह तो है आप ही के खेत की—माटी
गला कर या जला कर आप इसका खाद करते हैं ॥५॥
अहो मूरख हृदय परती वहाँ गौ रूप श्रुतियों को
चराते आप ज्ञानी ग्वाल सँग आह्लाद करते हैं ॥६॥
अजा औ महिषि भेड़ों सी लिये सँग कुछ कलाओं को
इन्हीं में नर्तकी राधा मुरलि का नाद करते हैं ॥७॥
कृषक से कृष्ण वाहक और नर्तक आप ही बनते
विविध विधि वृत्तिमत् हो सार्थ आर्थिक वाद करते हैं ॥८॥
प्रभो निज एक को नाना बना बहु वृन्द कर डाले
सभी से आप ही "कैलास" में समवाद करते हैं ॥९॥

※ ※ ※

(८)

शिव की जटा लागे प्यारी, जटा लागे प्यारी
जा में वहे गंगाधार, शिव की जटा लागे प्यारी ॥१॥

एक तो सुन्दर तन गोरा सुन्दर तन गोरा
दूजे चन्द्रमा लिलार शिव की जटा बड़ी प्यारी ॥२॥
एक तो गले में मुण्डमाला, गले मुण्डमाला
दूजे सोहे नाग हार शिव की जटा लागे प्यारी ॥३॥
एक तो सुन्दर मृगछाला, सुन्दर मृगछाला
दूजे धारी जरीदार शिव की जटा लागे प्यारी ॥४॥
एक तो सूरत भोली भाली सूरत भोली भाली
दूजे दानी हैं उदार शिव की जटा लागे प्यारी ॥५॥
एक तो "कैलास" के स्वामी, कैलास के स्वामी
दूजे सबके प्राण अधार शिवकी जटा लागे प्यारी ॥६॥

—:o:—

(६)

जै बंभोले अलख निरञ्जन जन मन रञ्जन आजा
मेरे दिल का कर दुख दूर भगत भय भञ्जन आजा ॥१।
पतित हूं नाथ मैं तेरी जटा में गंग धारा है
न जाने उसने कितने पापियों को रोज तारा है।
प्रभो मलवाहिनी को अमल कर शिर पर चढ़ाये हैं
कलङ्की चन्द्रमा को भाल का भूषण बनाये हैं।
जै शिव अशरण शरण कृपालु पतित जन पावन आजा ॥२॥

मथन कर सिन्धु का सुर दानवों ने रत्न निकल्या
उसी के साथ विष भारी भयंकर सामने आया।
दहन करने लगी संसार को विष की महा ज्वाला
उठा कर पी गये तब आपही तो जहर का प्याला।
जै शिव नीलकण्ठ परममेश्वर साकृत सज्जन आजा ॥३॥
तुमारी ज्योति में श्री विष्णु ब्रह्मा खूब भटके थे
मिला नहिं अन्त तो तेरे चरण पर शीश पटके थे।
तेरी की विष्णु ने पूजा चढ़ा निज आँख की पुतली
बनाया 'कमल" लोचन आपने हरिकी विनय सुनली।
जै शिव तारन तरन उदार दुसह दुख भञ्जन आजा ॥४॥
सुदर्शन चक्र देकर विष्णु को तुमने बचाया था
पढ़ा कर वेद ब्रह्मा को जगत रचना रचाया था।
तुम्हीं ने मृत्यु को जीता बचाया मारकण्डे को
किया चिरजीवि ऋषिको तोड़कर यमराज डण्डे को
जै शिव मृत्युञ्जय भगवान भगत जन रक्षन आजा ॥५॥
दिया गढ़ लंक रावण को धनुष श्री राम को देकर
विचरते तुम रमाकर भस्म करमें खोंपड़ी लेकर।
जगत विख्यात है महिमा त्रिलोकी नाथ भोला की
अमर चोला बनाती है जरासी खाक झोला की।
जै शिव कवि कैलास नयन के बन के अञ्जन आजा ॥६॥

—:○:०:○:—

प्राकृत लोकगीत

(१०)

देखा मैं तोर शिव नंगा गौर जगऽऽदम्बा देवी। देखा मैं तोर० ॥१॥

—*—

पूड़ी मिठाई शिव मनहीं न भावे,
मारे धतुरवा का फंका ॥२॥ गौर०
कोठा अँटारी शिव मनही न भावे,
वन ही में मन रहे चंगा ॥३॥ गौर०
हाथी घोड़ा शिव मनहीं न भावे,
चढ़ता बैलवा के कंधा ॥४॥ गौर०
शाला दुशाला शिव मन ही न भावे,
ओढ़े बाघम्बर अंगा ॥५॥ गौर०
हीरा मोती शिव मनहीं न भावे,
भूषण धारे भुजङ्गा ॥६॥ गौर०
माथे भभूत गले मुण्ड माला,
सोहे जटा बिच गंगा ॥७॥ गौर०
झोला में कुण्डी बगल में सोटा.
पीये चकाचक भङ्गा ॥८॥ गौर०
महा श्मशानों में ध्यान लगावे,
भूतों पिचाशों के संगा ॥९॥ गौर०
गिरि कैलास पर 'चहका' मचावे,
गावे भजन अडवंगा ॥१०.। गौर०

—:०:—

(११)

धन धन' भोला नाथ महराज, विरद सम्भारना रे ॥१॥ चि०

* ❁ *

अरुण कपोल त्रिलोचन राजे
वाल चन्द्रमा भाल विराजे
जटा जूट में गंग भगत जन तारना रे ॥२॥ चि०

श्री नीलकण्ठ शुचि भस्म अङ्ग
नर मुण्ड माल भूषण भुजङ्ग
कर में त्रिशूल धरि धाइ असुर संहारना रे ॥३॥ चि०

अति विकट भट श्री महाकाल
कटि कसि लँगोट पै व्याघ्र छाल
धरि झटकि पटकि त्रिपुरारि त्रिपुरदल मारना रे ॥४॥ चि०

झट भभकि उठा जब काम ज्वाल
लोचन विशाल किय लाल लाल
लखि दृष्टि मात्र से काम, कलहको जारनारे ॥५॥ चि०

अति हो प्रशस्त करुणा निधान
सुर असुर सभी को दिये दान
महिमा महान करि दान गरीब उधारनारे ॥६॥ चि०

"कैलास" नाथ मेरो पकड़ि हाँथ
निज़ दास जानि करिये सनाथ
हे दीन वन्धु भगवान मुझे भी तारनारे ॥७॥ चि०

—·—०—·—

(१२)

वंभोला रे अलवेला रे मेरे दिल का तू उँजियार रे
आज उतारूँ आरतिआ ॥१॥

मुख सुन्दर प्यारा प्यारा, शिर बहे गंग की धारा
गल बीच भुजङ्ग काला रे—मुण्ड माला रे
शोभित चन्द्रमा लिलार रे आज उतारूँ आरतिया ॥२॥
नैना तीनों रतनारे—कानों में कुण्डल वारे
भूरी सी जटा घुँघुराली छटा निराली रे
तेरी महिमा अगम अपार रे आज उतारूँ आरतिआ ॥३॥
पद मंजुल "कमल" रसाला पहिने सुन्दर मृग छाला
कटि कनक मेखला साजे रूप विराजे—रे
सब जग के प्राण अधार रे आज उतारूँ आरतिआ ॥४॥
करमें त्रिशूल छवि न्यारी डिमड़िम डमरू डिमकारी
धिनकत मृदङ्ग धुनि बाजे ताण्डव साजे रे
तेरी कला ललित संसार रे आज उतारूँ आरतिआ ॥५॥
नाचत छूम छूम छन नन नन झनकत पायल झन नन नन
धुनि मधुर डँफलिआ बाजे नटवर राजे रे
त्रिभुवन मन मोहन हार रे आज उतारूँ आरतिआ ॥६॥
गिरिवर "कैलास" विशाला ता के ऊपर शिवशाला
तँहँ ताण्डव नृत्य रचाते सुरमुनि आते सब सुख पाते रे
मेरी नैया कर दे पार रे—आज उतारूँ आरतिया ॥७॥

* * *

(१३)

विद्वान बड़े जो धैर्यवान, परमात्म भरोसे रहते हैं
निज कर्मों पर करि पुनः ताप, जगदीश्वर से यह कहते हैं ।।१।।
निज इन्द्रिय गणकी वृत्ति रोक, मन ही मन विनय सुनाते हैं
सब के रक्षक श्रीशङ्कर की, वह जै जै कार मनाते हैं ।।२।।

—:०:—

(१४)

अब चलती नहीं गठरी भारी, मेरे शिर चढ़ी पाप की है
चहुं ओर अँधेरा छाया है, भगवान भरोसा आपकी है ।।१।।
दीनों की सुधि लेते शंकर, प्रभु दीन दयालु कहाते हैं
सुन आर्तनाद निज भक्तों का, औढर दानी ढुर जाते हैं ।।२।।
छोटे मुख से क्या विनय करूँ, कुछ कहने भी नहिं आता है
गुन सुनकर श्रवन अघाते हैं पर, कलुषित हृदय लजाता है ।।३।।
अब दीन दयालु दया करिके, अपराध छमा करिये मेरा
अशरण हूं नाथ शरण दीजै, हरिये वासना तिमिर घेरा ।।४।।
हे नाथ मुझे अब जान पड़ा, सच्चा दरबार आपका है
जो मिलता दण्ड मुझे वह तो, फल मेरे किये पाप का है ।।५।।
सच्चा न्यायालय प्रभु का है, उसके नयनिर्णय सच्चे हैं
हो क्षमा प्रार्थना है मेरी, हम नाथ ! आपके बच्चे हैं ।।६।।

हम बालक प्रभुजी पिता आप, गोदी में मुझे उठा लीजे
सुनते हैं प्रभु जी दानी हैं, तो दया दान मुझको दीजे ॥७॥
तमसावृत गर्त पतित हूं मैं, प्रभु पावन पतित अधमके हैं
उब गया दण्ड पूरा पाकर, दुःख नहीं सहाते हमसे हैं ॥८॥

❀ । ❀

"प्रभु के महिमा - की गति न्यारी" ॥१॥

श्री भगवान दयामय शंकर दीनन के हितकारी
अलख निरञ्जन भवभय भञ्जन जगदात्मा त्रिपुरारी ॥२॥
शशि शेखर सुर सरित विराजित जटा जूट शिर धारी
कच घन मंडल वहति अञ्जली मोचति अमृत वारी ॥३॥
रवि शशि अनल अमल त्रयलोचन शोच विमोचन हारी
शुद्ध शान्त रस रसिक मनोहर त्रिगुणात्मक छवि भारी ॥४॥
नासा छवि मन भावन पावन पवन त्रिविध सञ्चारी
स्फटिक कटक श्रुति तट कुञ्चित कच की शोभा अधिकारी ॥५॥
अरुण "कमल" दल गौर कपोलनि पै पराग दुति भारी
रसना शुचि पीयूष ब्रह्म रस निरसति निगम विचारी ॥६॥
वहीं पुच्छ कला द्युति नीलम कंठ हलाहल धारी
अति प्रसन्न मुख मन्दहाँस की रेखा मधुर पियारी ॥७॥
भुजगहार केयूर विराजत राज कला उँजियारी
पञ्चमुखी रुद्राक्ष माल गल अंश कला गति धारी ॥८॥

सुर घन पक्षि मार्ग त्रिवलीमय नाभि गगन विस्तारी
मेरु सुमेरु अचल दृढ़ सुस्थिर लोमलता तरु भारी ॥६।
बाघम्बर कञ्चन मणि राजित सुन्दर सजी किनारी
उभय चरण पर चरण विराजित बैठे आसन मारी ॥१०॥
योगासन सिद्धासन सोहत कमलासन गति न्यारी
ओढ़ि चले गज चर्म दीन हित बूढ़ा बैलसवारी ॥११॥
खंड इगारह सूक्ष्म लोक में स्थूल चरण महि धारी
कुक्षि मध्य रचि महासिन्धु प्रभु कटि मेखला सँवारी ॥१२॥
विश्व रूप विश्वात्मा श्री विश्वेश्वर जन हितकारी
अटलछत्र "कैलास" शिखर पर जगदम्बा सी नारी ॥१३॥
"प्रभु के महिमा की गति न्यारी"

* * *

(१६)

जब आर्तनाद करि कुहुंके दिल, निकले स्वर "हर हर महादेव"
पशुपते! दयाकर! श्रीशंकर!, सुनते पुकार देवाधि देव ॥१॥
आ जाते दिल में शिव सुन्दर, श्रीशंकर पैदल यात्रीवन
परिधान मूँज मेखला चर्म, अवधूत वेष करपात्री बन ॥२॥
शोभित भुजङ्ग के हार अङ्ग, शिर चन्द्रकला विभ्राजमान
गौराङ्ग रूप शोभा अनूप, प्रत्येक अङ्ग विज्ञान ज्ञान ॥३॥
शतकोटि भानु लज्जित कृशानु, अति दिव्य भव्य शुभ तेजपुञ्ज
शुचि सन्त वेष पावन महेश, रचि जटा मध्य निर्झरि निकुञ्ज ॥४॥

प्रतिबन्ध मूल छेदन त्रिशूल, करमें कुठार ले महाकाल
नर मुण्डमाल योद्धा कराल, गल में लपेट पञ्चास्य व्याल ॥५॥

आजानु हाँथ 'कैलास" नाथ भगवान भक्त वच्छल दयालु
अतिशय अनूप त्रैलोक्य भूप परमात्म तत्व साकृत कृपालु ॥६॥

करुणानिधान शंकर सुजान गुणतीन मान लोचन विशाल
जग के निदान महिमा महान अध्यात्मज्ञान जन लोकपाल ॥७॥

चरणारविन्द वसुधा अनिन्द्य नभ नाभि देश शोभाय मान
शिर स्वर्ग क्षेत्र आदित्य नेत्र लघु रूप रुद्र श्रीहनूमान ॥८॥

अज अलख वेद निर्गुण अभेद अद्वैत रूप आनन्द धाम
नय जीवलोक हित कृत त्रिशोक अवतरित शम्भु श्रीराम नाम ॥९॥

ओं से अहम पुनि महत ब्रह्म नर नारि रूप द्वैतत्व भ्रान्ति
षटकोश बद्ध आत्मा विशुद्ध कृत पञ्चकोश मृत मुक्ति शान्ति ॥१०॥

अविकल अनूह सुखमा समूह श्रुति चकित गुण सीमा रहित
मुनि नाग मानव देव दानव गीयमान विमल चरित्त ॥११॥

साकार सुन्दर चन्द्रशेखर मन्द हाँस विलास मुख
सर्वज्ञ ईश्वर देव शंकर—प्रकृति के वश लहत सुख । १२॥

आनन्द कन्द प्रतिभा अमन्द साकार रूप शिव निराकार
धरि वीर वेष हरि के हियेश झट आते हैं सुनि जन पुकार ॥१५॥

* * *

(१७)

धुनि उठे गगन भेदी स्वर में बम्भोले "हर हर महादेव"
जै जै शिवशंकर शान्ति धाम जै दहन महाबल कामदेव ॥१॥
जैं स्थाणु ईश जै परमात्मा जै जगदीश्वर औढ़र दानी
अविकल निश्चल परिपूर्ण ब्रह्म जै विश्वम्भर प्रतिपल ज्ञानी ॥२॥
जै अलख निरञ्जन भयभञ्जन सज्जन जन के मन के मराल
जै सत्यदेव सुखशान्तिधाम निष्काम कोटि रवि छवि विशाल ॥३॥
निर्गुण निर्हंकृत निर्विकार निर्द्वन्द निरामय निराकार
निरवधि निरुपम निर्दहनमार निरुपाधि निरावृत निराधार ॥४॥
जै हो जै हो जय जयाकार संसार सनातन धर्म रूप
जै जगन्नाथ जग जनक देव जै जै महेश त्रैलोक्य भूप ॥५॥
जै विष्णु विधाता पितृ देव सच्चिदानन्द महिमा अनन्त
जै अनिर्वाच्य पद शान्त ब्रह्म जै ज्ञान मान प्रद परम सन्त ॥६॥
जै कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तु मतिशक्तिमान शंकर सुजान
व्यापक विवेक मय लभ्य सभ्य जै सगुण रूप निर्गुण महान ॥७॥
परमाणुतत्व के गुण स्वभाव पहिचानि शोधि करि पञ्चभाग
विधि वेद रूप हो समाधिस्थ जग रचे नाथ! शुचि सानुराग ॥८॥
निज पांच अङ्ग में पञ्चभूत ले विरचि विश्व ब्रह्माण्ड गोल
पदभूमि नाभिनभ स्वर्गशीश देखते भानुमय नेत्र खोल ॥९॥
जै विश्ववेद पोषक प्रधान जै वृद्धवाक्य श्रोता सुजान
भगवान भूतपति देहप्राण जयजयति चेतनामय महान ॥१०॥
"कैलास" धाम बासी कृपालु दुख हरो नाथ शंकर दयाल
निजचरण भक्ति दे चन्द्रभाल निज "सेवक" को करिये निहाल ॥११॥

* * *

(१८)

ये लीला तुमारी तुमारी बनाई
समझ के थका मैं समझ में न आई ॥१॥ ये०
अगम है अलख है अजब है अनोखी
थका वेद गाके ये जाती न गाई ॥२॥ ये०
चकित हो इसे श्रुति ग्रहण कर रही है
प्रभो ये किसी के पकड़ में न आई ॥३॥ ये०
थके विष्णु ब्रह्मा तुझे माँप हारे
तुमारी बड़ाई न जाती बताई ॥४॥ ये०
थकी शारदा शेष भी हार बैठे
कला केलीलों बुद्धि जाने न पाई ॥५॥ ये०
बड़ी शक्ति वाले बड़े भोले भाले
बने आप जैसे न जाती बनाई ॥६॥ ये०
अहो बूँद पानी से दुनियां बनाके
चलाये स्वयं जोन जाती चलाई ॥७॥ ये०
अहम को उलट के महत रूप होते
अहम ही पिता औ महत रूप माई ।८॥ ये०
निराकार से आप साकार होके
प्रभो एक ही में दिये दो दिखाई ॥९॥ ये०
यही रूप अर्धाङ्ग शंकर कहाता
जिसे देख "कैलास" मस्तक नवाई ॥१०॥ ये०

—:○:०:○:—

सुरतिया यही दिल से बिसरति नाहीं ॥१॥

—*:*—

गौर अङ्ग मुख मञ्जुल सुन्दर
नयन तीन शिर सोह कलाधर
जटाजूट में पतित पावनी
गंगा निरखत पाप पराहीं ॥२॥ बिस०

भाल विशाल त्रिपुण्ड विराजे
मुण्डमाल अहि भूषण साजे
भस्म राग रञ्जित किशोर तनु
निरखि कोटिशत काम लजाहीं ॥३॥ बिस०

पीत यज्ञ उपवीत कांध पर
कञ्चन पाढ़ बसन बाघम्बर
"कमल" चरण मणि जटित पांदुका
दर्शन ते अघ ओघ नसाहीं ॥४॥ बिस०

कर त्रिशूल विजया भरि झोला
अति आनन्द मगन मन भोला
बरदानी "कैलास" भवन ते
भक्तन के घर आवहिं जाहीं ॥५॥ बिस०

—:—

* * *

सनातनधर्मो विजयते

श्रीमद्भागवत शंका-समाधान

(मानस गंगाप्रवाह)

लेखक—

एक महात्मा गंगातट

प्रकाशक—

यज्ञदत्त ब्रह्मचारी, सांग वेदविद्यालय,
नरवर, पोष्ट नरौरा,
जिला बुलंदशहर

मूल्य प्रेम।

मुद्रक पं० रामनारायण पाठक, श्रीराधेश्याम-प्रेस, बरेली ४४२-१०००-२३-२-३६

प्रस्तावना

आजकल श्रीमद्भागवत का रहस्य नहीं जानने के कारण बहुत से लोग संशय में पड़े रहते हैं, और कोई कोई भगवल्लीलाओं में आक्षेप भी किया करते हैं। उन सज्जनों की मुख्य मुख्य शंकाओं के समाधान के लिए यह पुस्तक शास्त्रीय तर्कों से अविरुद्ध लिखा गया है। आशा है कि सभी विद्वज्जन इसका अध्ययन कर लेखक के परिश्रम को सफल करेंगे।

श्रीमद्भागवत में आनेवाली मुख्य मुख्य शंकाओं

का

समाधान

तरङ्गः (१)

सर्व प्रथम यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि श्रीमद्भागवत में १ ब्राह्मकल्प २ पाद्मकल्प ३ श्वेतवाराहकल्प ४ सारस्वतकल्प (रासलीला का कल्प) आदि नाना कल्पों की कथायें ग्रथित हैं। हर एक कल्प के राम-चरित्र से, कृष्ण-चरित्र से, शुकदेव परीक्षित संवाद से, विदुर मैत्रेय संवाद से, जन्मेजय के सर्पसत्र से तथा इतर चरित्रों से दूसरे कल्प के इन्हीं चरित्रों में अवश्य कुछ न कुछ भेद अवश्य दीख पड़ता है। इस भेद का मुख्य कारण उन चरित्रकारों के प्रारब्ध कर्म का भोग भिन्न भिन्न होने से है। तुलसीकृत रामायण में भी भिन्न॰भिन्न कल्प में भिन्न भिन्न रावण कुंभकरण आदि होने का लिखा है। महाभारत आदि पर्व

में अ० २० में पिछले कल्पों में भी जनमेजय से सर्पसत्र होना तथा परीक्षिन्मृत्यु सर्पदंश से होना आदि लिखा हुआ मिलता है। किसी परीक्षित का देहावसान प्रासाद में तथा किसी परीक्षित का गंगातट पर हुआ था। और किसी विदुर जी का देहावसान कृष्ण जी के वैकुंठ पधारने के पहले तो किसी विदुर जी का श्रीकृष्ण जी के स्वधाम पधारने के बाद ही लिखा है। यह भेद भारत कथा भागवत कथाओं को देखने से मालूम पड़ता है। कुछ प्रामाणिक श्लोक इस प्रकार हैं—आदि पर्व अ० ५१. अस्ति राजन् महत्सत्रं त्वदर्थं देवनिर्मितम् । सर्पसत्रमितिख्यातं पुराणे परिपठ्यते ॥ आहर्ता तस्य सत्रस्य त्वन्नान्योस्ति नराधिप । इति पौराणिकाः प्राहुः अस्माकं चास्ति स क्रतुः ॥ इससे पौराणिक कथायें भारत रचना से भी पूर्वकाल में लोक में प्रख्यात थीं यह सिद्ध होता है। तथाच आदिपर्व अ० २० सर्पसत्रे वर्तमाने पावको वः प्रधक्ष्यति। जनमेजयस्य राजर्षेः पाण्डवेयस्य धीमतः ॥ दृष्टं पुरातनं ह्येतद्यज्ञे सर्पविनाशनम्। इत्युक्त्वा सृष्टिकृद्देवः तं प्रसाद्य प्रजापतिम्। प्रादाद्विषहरीं विद्यां कश्यपाय महात्मने ॥ कृतयुगे भृगोः प्रपौत्रः रुरुरुवाच। कथं हिंसितवान् सर्पान् स राजा जनमेजयः॥ अ० ४० से अ० ४४ तक परीक्षिन्मृत्यु चरित्र भी है। महिषासुर का वध स्कंद से होना भारत में लिखा है तथा दुर्गापाठ में दुर्गा जी से वध होना लिखा है, इत्यादिः। इन दृष्टांतों से कल्प—भेद

में कथा-भेद होना सिद्ध हुआ। चाहे जिस कल्प का भगवच्चरित्र हो वह पुण्यदायक तथा जीवों की सांसारिक वासना को नष्टकर भगवदनुराग को अवश्य पैदा करेगा।

तरङ्गः (२)

आगे जहाँ संख्या लिखी होगी वहां भागवत के स्कंध अध्याय श्लोकों की संख्या समझनी चाहिए। प्रत्येक कल्प में भगवान् के दस अवतार होते हैं, और कल्प के प्रारंभ में शेषशायी नारायण के द्वारा ब्रह्मा जी को चारों वेद, इतिहास, पुराण आदि चतुर्दश विद्याओं का उपदेश प्राप्त होता है। अनंतर इन ग्रन्थों का ब्रह्मा जी से नारद, वसिष्ठ प्रभृति ऋषिमण्डल को तथा नारद आदि मुनियों से वेदव्यास, शुकदेव, परीक्षित, सूत, शौनक आदिकों को उपदेश प्राप्त होता हुआ इस घोर कलिकाल में हम लोगों के भी कल्याणार्थ श्रवणगोचर हो रहा है। जैसे स्कंध १२ अ० १३ में-तत्राष्टादशसाहस्रं श्रीभागवतमिष्यते। इदं भगवता पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपंकजे। स्थिताय भवभीताय कारुण्यात् संप्रकाशितम्॥ कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा। तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा। योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्राताय कारुण्यतः। तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि॥ योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे। संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत्॥ इन श्लोकों से १८ हजार श्लोकात्मक भागवत श्रीनारायण ने ब्रह्माजी को उपदिष्ट्या यह निश्चय हुआ। श्रीमद्भागवत

में सूत उवाच, शौनक उवाच, परीक्षिदुवाच, श्रीशुक उवाच इत्य दि संपूर्ण वाक्य अर्थात् भागवत के आदि से लेकर समाप्ति पर्यंत एक एक अक्षर श्रीनारायण ने ब्रह्माजी को उपदेश किया था। प्रत्येक कल्प के प्रारंभ में ब्रह्माजी को इसका उपदेश प्राप्त होने के कारण यह भागवत ग्रंथ वेदों के ग्रंथ की तरह अनादि सिद्ध है। इसमें कहे प्रकार भगवद्भक्ति के प्रचारार्थ राम, कृष्ण, हनुमान्, उद्धव, शुक, परीक्षित, सूत, शौनक, कल्कि आदि भक्त भगवान् के अवतार प्रत्येक कल्प में होते हैं जिससे जीवों का उद्धार होरहा है। इस ग्रंथ में षड्-दर्शन-पारंगत धुरंधर विद्वानों को अत्यंत प्रीति होजाने से ही इसका जगत् में बड़ा आदर है। गुरुजनों का कहना है कि "विद्यावतां भागवते परीक्षा"। इस ग्रंथ की श्रेष्ठता भी श्रीकृष्ण जी के बराबरी की है। जैसे—नारदपुराणे—सुरपादपरूपोऽयं स्कंधैर्द्वादशभिर्युतः। भगवानेव विप्रेन्द्र विश्वरूपी समाहितः॥ इति॥

श्रीकृष्ण जी के वैकुंठ पधारने के वाद शुकदेव जी के सूत के समक्ष परीक्षित को उपदेश करने के अनन्तर इस भागवत का सर्व साधारण जनों को श्रवणगोचर होने का अवसर प्रत्येक कल्प में होता है। इसीलिए स्कंध १-४-४५ में लिखा है कि कलौ नष्ट-दृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः॥ ऐसे श्रेष्ठ तथा मंगलमय भागवत ग्रंथरत्न में कोई भी कुतर्की पण्डितम्मन्य मनुष्य आक्षेप न करें, बल्कि गुरुजनों से अर्थ समझने का कष्ट करें।

तरङ्ग (३)

श्रीशुकदेव जी के परीक्षित के पहिले ही विदेहमुक्त हो जाने से परीक्षित को भागवतोपदेश होना असंभव है इस प्रकार जो शंका करते हैं उनके समाधानार्थ कुछ लिख देता हूँ।

(१) बृहन्नारदीय पुराण के अनुसार किसी कल्प में श्रीशुकदेव जी के मर्त्यलोक से वैकुण्ठ लोक में जाने के अनन्तर व्यास जी वदारिकाश्रम में तप करने लगे। उस समय श्रीशुकदेव जी को भगवान् ने आज्ञा दी कि तुम मर्त्यलोक में जाकर व्यास जी से भागवत का अध्ययन करो और उसका परीक्षित आदि भक्तों में प्रचार करो। यह घटना भी किसी कल्प में हुई थी।

(२) भारत के अनुयायी विद्वान् लोग श्रीछायाशुक से ही भागवत का उपदेश परीक्षित को प्राप्त होना मानते हैं। तथा उसी शुक का विवाह आदि पुत्र प्रपौत्रादिक का होना देवीभागवत और श्रीमद्भागवत स्कंध ९ में तथा हरिवंश आदि में भी लिखा हुआ मिलता है। यह घटना भी किसी कल्प में हुई थी।

(३) किसी अनुभवी महात्मा के मत से तो किसी कल्प में श्रीकृष्ण ने ही शुकदेव जी का रूप धारण कर परीक्षित और सूत को उपदेश कर विच्छिन्न भागवतोपदेश-परम्परा की रक्षा की है। कारण अनावृति रूप कैवल्य धाम को श्रीशुकदेव जी पहिले ही प्राप्त हो चुके थे। तथा भागवत के आदि से अन्त तक जहाँ जहाँ

श्रीशुकदेवजी का उल्लेख आता है वहां वहां परब्रह्म श्रीकृष्ण ही शुक रूप से निर्दिष्ट मालूम पड़ते हैं। जैसे—स्कंध १।२।२ में तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोस्मि ॥ यह वाक्य भी सर्वान्तर्यामी भगवान् को ही शुक मुनि के नाम से प्रतिपादन करता है। क्योंकि सर्वान्तर्यामी तो ईश्वर के सिवाय किसी योगी या जीव का होना ब्रह्मसूत्र भाष्य के मत से विरुद्ध है। ब्र० सू० शां० भाष्य गुहाधिकरण अ० १।२।११, तथा ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेर्जुन तिष्ठति और सर्वस्यचाहं हृदि सन्निविष्टो० यह गीता वचन भी ईश्वर की ही अन्तर्यामी होना सिद्ध कर रहे हैं। तथा श्रीधरी टीका भागवत स्कं० १–१९–२० का वचन भी शुकरूप श्रीकृष्ण जी से ही राजा परीक्षित को भागवतोपदेश होना बता रहा है। जैसे—अन्तेग्रः शुकरूपतः स्वपरमज्ञानोपदेशेन तं। शापादावदमुं नमामि परमानंदाकृतिं माधवम्। तथा—अपि मे भगवान् प्रीतः कृष्णः पाण्डुसुतप्रियः। पैतृष्वस्रेयप्रीत्यर्थं तद्गोत्रस्यात्तबांधवः ॥ यह परीक्षिद्वचन भी इसी गूढार्थपरक है। शुकाय ब्रह्मरूपिणे स्कं० १२।१३ और तं ह्यष्टवर्षं १।१९।२६ यह वचन भी षोडशवर्ष वयस्क शुकरूप से कृष्ण ने ही उपदेश किया था यह बता रहे हैं। भारत के मोक्ष धर्म में शुक की उम्र २५ वर्ष की थी जैसे—गता त्रिरष्टवर्षता वयोऽसि पंचविंशकः ॥ इत्यादि प्रतिपादन होने से उपर्युक्त बात भी निर्विवाद सिद्ध हुई है। और भी भागवत में स्कं० १२–४–४१

स्कं० १२ ६।४३, स्कं० ११।२४ १० से १४ तक, स्कं० ९।२२। २२ आदि उपदेश-परम्परा प्रवाह को जानने में प्रबल वचन है । जहां 'चक्रे सात्वतसंहिताम्' इत्यादि वचन मिलेंगे वहां वेदों की तरह नित्य सिद्ध भागवत ग्रन्थ को ही जनता में प्रचार या प्रगट किया ऐसा समझना चाहिए ।

तरङ्ग (४)

भागवत में भिन्न भिन्न कल्प की कथायें इस प्रकार हैं :— जैसे—स्कं० १।३।१५ चाक्षुषोदधि संप्लवे० यह चाक्षुष मन्वन्तर की कथा है ॥ स्क० २।१० ४७ पाद्मं कल्पमथोश्रृणु० इस श्लोक से आगे के स्कंध में पाद्म कल्प की कथायें हैं । स्कं० ३।४.१३ पुरा मया प्रोक्तमजायनाभ्यं० नारायण ने पाद्म कल्प में ब्रह्मा जी को भागवतोपदेश किया था । स्कंध ३।८।३ एक कल्प में श्री शेष जी ने भी भागवत का उपदेश दिया था । स्कं० ६।१०।१६ त्रेतामुखे नर्मदायामभवत् प्रथमे युगे । प्रारंभ के महायुग में अर्थात् स्वायंभुव मन्वंतरमें वृत्रासुर-वध की कथा हुई थी । आजकल वैवस्वत मन्वंतरके ८ वें महायुग का चतुर्थ चरण (कलियुग) चल रहा है । इसी तरह सुरथ राजा तथा समाधि नामक वैश्य की कथा स्वारोचिष मन्वंतर में हुई थी । दुर्गापाठ अध्याय १ में स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः श्लोक देखिए । स्कंध ९।११।१८ में श्रीरामने १३ हजार वर्ष राज्य किया था । त्रयः-

दशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखण्डितम् ॥ तथा वाल्मीकि रामायण में ११ हज़ार वर्ष राज्यकाल लिखा है, जैसे—दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानिच । रामोराज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोके गमिष्यति ॥ वाल्मिक ऋषि जब व्यास पद पर आरूढ़ हुए थे उस २४ वें महायुग में होने वाली रामावतार की कथा वाल्मीकीय रामायण में है, तथा २८ वें महायुग में कृष्ण द्वैपायन जी के व्यास पद पर आरूढ होने से इसी महायुग में होने वाली रामावतार की कथा ब्रह्माण्ड पुराण के अध्यात्म रामायण में लिखी है, तथा पाद्म कल्प की रामावतार की कथा भागवत में है। आगे के २९ वें महायुग में व्यास पद पर अश्वत्थामाजी आरूढ़ होंगे। इस विषय में विष्णुपुराण ४ अंश में देखिये। किसी किसी कल्प में जय विजय, शिवगण, जालंदर, प्रतापभानु आदि रावण कुम्भकरण होने से उनके उद्धार करने के लिए रामावतार हो चुके थे। प्रत्येक व्यास को समाधि दशा में भूत भविष्य कालीन पौराणिक कथाओं की स्मृति प्राप्त हो जाती है। जैसे—युगांतेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः। लेभिरे तपसापूर्वमनुज्ञातः स्वयंभुवा-मनुः ॥ प्रत्येक कल्प में एक हज़ार महायुग होते हैं, तथा १४ मन्वंतर और एक हज़ार व्यासावतार भी होते हैं जो कि जगत में पुराणों के प्रचार करते हैं। पहिले महायुग के व्यासावतार होने के अनन्तर हो अर्थात् पहिले महायुग के द्वापर के प्रारंभ में व्यासावतार होने के अनन्तर ही दूसरे महायुग के त्रेता युग में

भगवान् रामचन्द्र का जय विजय के निमित्त अवतार हुआ था। इसीलिए स्कंध १।३।२१ में-ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् इस प्रकार व्यासावतार को कह कर पश्चात् रामावतार लिखा है—नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया। समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम्॥ तुलसीकृत रामायण भी इस विषय में प्रामाणिक समझना। दुर्गापाठ में शुंभनिशुंभ के वध होने के अनन्तर जैसे—शुंभो निशुंभश्चैवान्याव्वुत्पत्स्येते महासुरौ। शुंभ निशुंभ कलियुग के आदि में भी होना तथा देवी के हाथ से उनका वध होना आदि लिखा है। उसी तरह एक धुंधुकारी नामक भागवत का श्रोता भी परीक्षित राजा के पूर्व तथा पश्चात् भी जन्म ले चुका था यह भागवत माहात्म्य से ही सिद्ध होता है। एक ही नाम के दो मनुष्यों का पृथक् पृथक् समय में जन्म होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है॥

तरङ्गः (५)

सारस्वत नामक किसी पूर्व कल्प में श्रुतियों को भी गोपियां बनने की इच्छा हुई थी। जैसे बृहद्वामन पुराणे श्रीकृष्ण उवाच— आगामिनि विरिंचौतु जातेसृष्ट्यर्थमुद्यमे। कल्पं सारस्वतं प्राप्य व्रजे गोप्यो भविष्यथ॥ तथा पद्मपुराणे—गोप्यस्तुत्र श्रुतयो ज्ञेया ऋषिजा गोप कन्यकाः। देव कन्याश्च राजेन्द्र न मानुष्यः कथंचन॥ बहुत

से ऋषि और देव कृष्णावतार के समय जब गोपों के रूप में अवतीर्ण हुए थे उन्हीं गोपों की कन्यायें (श्रुतिरूप) गोपियां थीं। रास-पंचाध्यायी में रास-क्रीडा की कथा है। श्रीकृष्ण-लीला-प्रिय बहुत से ऋषिगण भी पक्षियों के रूप धारण कर अनिमिष नेत्रों से गोप-वेषधारी भगवान् की बाललीलायें देखा करते थे।

रासलीला का रहस्य इस प्रकार है। स्कंध १० अ० २९ से ३३ तक ॥ मार्गशीर्ष मास में कात्यायनी व्रत समाप्ति के दिन श्रीकृष्ण भगवान् ने गोपियों को (११ मास के अनंतर) शरदृतु में क्रीडा करने का वरदान दिया था। ८ वर्ष वाले उस श्रीकृष्ण जी ने अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए ही शरदृतु की पौर्णमासी की रात्रि में रासक्रीडा की थी। स्कंध १०।२९।१। भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः। वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥

रास में जितनी गोपियाँ थीं उतने ही श्रीकृष्ण जी ने अपने रूपों को निर्माण कर उनकी इच्छा पूरी की। स्कंध १०।३३।२१ कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः। रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोपि लीलया ॥ जैसे कि कोई छोटा बालक दर्पण में प्रतिबिंबित अपने मुख को देखकर उसको दूसरा बच्चा समझकर उससे खेलता ही रहता है, उसी तरह गोपियाँ भी श्रीकृष्ण रूप अपने ही आत्मा से क्रीडा करती हुई श्रीकृष्ण भगवान् को अपने

आत्मरूप से नहीं जान सकीं। जैसे स्कंध १०।३३।१७ रेमे रमेशो ब्रजसुंदराभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिंबविभ्रमः ।। उस समय श्रीकृष्ण भगवान् अत्यंत शोभायमान थे।

स्कंध १०।३२।२ तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखांबुजः। पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ।। रास में गोपियों से श्रीकृष्ण भगवान् के क्रीडा करने पर गोपियों को परदाराभिमर्श दोष नहीं लगा। कारण श्रीकृष्ण भगवान् समस्त गोपियों के तथा उनके पतियों के अंतरात्मा ही थे। इसलिये अपने अपने विवाहित पतियों से क्रीडा करना या श्रीकृष्ण भगवान् से क्रीडा करना यह तो एक ही सी बात हुई। इसलिये पातिव्रत्य भंग रूप दोष नहीं लगा।। स्कंध १०।३३।३६ गोपीनां तत्पतीनांच सर्वेषामेवदेहिनाम्। योंतश्चरति सोध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ।।

उस दिन यह भी एक विचित्र बात हुई कि रास में उपस्थित सभी गोपियों का रूप धारण कर श्रीकृष्ण भगवान् उन गोपियों के पतियों के सन्निध रात्रि भर रहे। जैसे कहा है स्कंध १०।३३।३८ नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्यमायया। मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् ब्रजौकसः ।।

श्रीकृष्ण भगवान् ने संकल्प से अपने नाना रूपों को धारण कर रासक्रीडा की थी। इसमें आश्चर्य [illegible]लिए नहीं करना चाहिए कि पहले भी एक बार ब्रह्माजी के वत्स व वत्सपालों को हरण

करते समय भगवान् नानारूपों को धारण कर चुके थे। स्कंध १०।१३।१८॥ ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातृणांच कस्यच। उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः॥ इसी तरह ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य में अ० ४।४।१५ में—प्रदीप वदावेशस्तथा हि दर्शयति-सूत्र में लिखा है। तथा च स्मृतिरपि—आत्मनो वै शरीराणि बहूनि भरतर्षभ। योगी कुर्याद् बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत्॥ प्राप्नुयाद्विषयान् कैश्चित् कैश्चिदुग्रंतपश्चरेत्। संक्षिपेच्च पुनस्तानि सूर्यो रश्मिगणानिव॥ ब्र० सू० भाष्य० अ० १।३।२७॥इत्यादिः॥ इन प्रमाणों से तो ब्रह्मलोक को प्राप्त या सगुण उपासक को भी नाना शरीर निर्माण सामर्थ्य उत्पन्न होना सिद्ध होता है। फिर अनेक कोटि ब्रह्माण्ड नायक संपूर्ण योगियों के ईश्वर परब्रह्म श्रीकृष्ण भगवान् में ऐसा सामर्थ्य होना यह उसकी भक्तों पर कृपा करने के लिए लीला मात्र ही है। पूर्वकाल में रावण आदि असुरों में भी ऐसा सामर्थ्य था। रामायण तथा दुर्गापाठ इसके लिए प्रमाणभूत हैं। भगवती दुर्गा ने भी अनेक रूपों को निर्माण कर पीछे सब रूपों का एक ही रूप बनाया॥ इत्यादिः॥ श्रीकृष्ण ने एक दिन दिव्य दृष्टि देकर अर्जुन को विश्वरूप दिखाया था यह गीता में अ० ११ में लिखा है, तथा स्कंध १०।२८।१६। दर्शयामास [illegible] गोपानां तमसः परम्। दद्दशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राक्रूरोऽध्यगात् पुरा॥ इस श्लोक में गोपों को भी वरदान से समाधि प्राप्त करवाकर वैकुंठ लोक का दर्शन

करवाया था। इसी तरह उद्धव अक्रूर तथा नन्द को भी अपना ऐश्वर्य वाला रूप दिखलाया था। भगवान् का गोवर्धन पर्वत का धारण करना, अपने मुख में यशोदा माता को ब्रह्माण्ड का दर्शन करवाना आदि अनेक लीलायें भागवत में प्रसिद्ध हैं। ऐसे परम मंगलमय लीला विग्रहधारी भक्तों के प्राणभूत सर्वेश्वर सर्वान्तर्यामी कृष्ण भगवान् के भक्ति करनेवालों को अपने अपने गुरुजनों से श्रीमद्भागवत का अध्ययन कर कृतार्थ होजाना चाहिए, तथा भगवल्लीला प्रधान इस ग्रन्थ का नित्य पारायण भी करना चाहिए, और सत्संग में भी इसी की चर्चा करनी चाहिए, एवं जन्म सफल होगा और श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन और वैकुंठ की प्राप्ति होगी इसमें कोई सन्देह नहीं।

तरङ्गः (६)

स्कंधः १०।३३।२७। राजोवाच। संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्यच। अवतीर्णोहि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥२७॥ स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता। प्रतीपमाचरद्ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥२८॥ आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वैजुगुप्सितम्। कि[illegible]प्राय एतं नः संशयं छिंधि सुव्रत ॥२९॥ इस परीक्षित राजा [illegible] प्रश्न का श्रीशुकदेव जी इस [illegible]र तथा समाधा[illegible]ते हैं कि—श्रीशुकउवाच। धर्मव्यति[illegible] दृष्ट ईश्वराणां च साहस[illegible]तेजीयसां न दोषाय वन्हेः सर्वभुजो यथा ॥३०॥

नैतत्समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः । विनश्यत्याचरन्मौढ्यात् यथा रुद्रोऽब्धिजं विषम् ।।३१।। ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् । तेषांयत्स्ववचोयुक्तं बुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ।।३२।। कुशलाचरिते नैषां इह स्वार्थो न विद्यते । विपर्ययेण वानर्थो निरहंकारिणां प्रभो ।। इति ।। गोपियाँ श्रुतियाँ अर्थात् वेद की ऋचायें थीं यह पहले ही लिख चुका हूँ । शब्द रूपी वेद (श्रुतियां) अर्थ के अधीन होजाते हैं यह सभी विद्वान् जानते ही हैं । इसी प्रकार गोपी रूप श्रुतियों का (वेद) वेदार्थ रूपी कृष्ण के अधीन होजाना या कृष्ण में तत्पर होजाना यह तो उन कृष्ण गोपी रूप अवतारों का मुख्य कार्य ही सिद्ध होता है । परंतु साधारण मनुष्य (जोकि ऐसे अवतार रूप नहीं है वे) परदाराभिमर्श आदि न करें । क्योंकि ऐसी अनधिकारी तथा धर्मशास्त्र विरुद्ध चेष्टा करनेवालों को इहलोक में निन्दा तथा परलोक में दुःख की प्राप्ति होगी इसमें संदेह नहीं । इस प्रकार भागवत में आनेवाली मुख्य मुख्य शंकाओं का समाधान हुआ ।

—०—

अथ

तत्व संहिता

अर्थात

तत्व विभाग

लेखक:—

पण्डित वामन चतुर्वेदी (मु० बिशुनपुरा) पो०
बसन्तपुर जिला छपरा निवासी ने बनाया

संशोधक

पं० श्री राम स्वरुप पाण्डे
पं० राम सूरत द्विवेदी
राजेन्द्र हाई ई० स्कूल हेड पंडित पहलेजपुर

प्रथमबार १०००] १९४८ [मूल्य ।=)

S. R. S. H. PRESS, MAHARAJGUNJ.
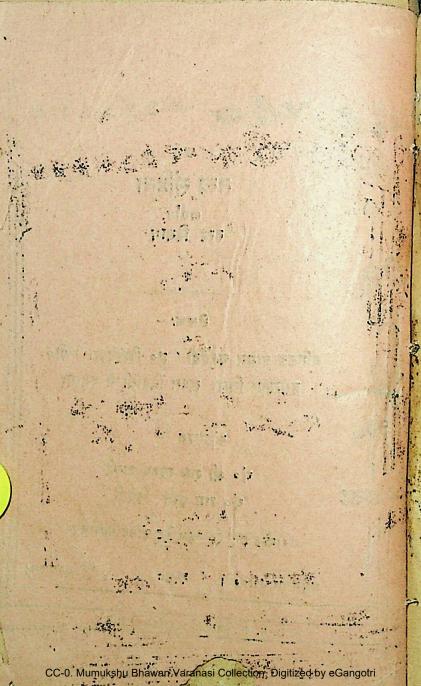
अथ

तत्व संहिता

अर्थात

यन्त्र विभाग

लेखक:--

पण्डित रामन चतुर्वेदी (मु० सिवनपुरा) पो० बसन्तपुर जिला छपरा निवासी ने बनाया।

संशोधक

पं० श्री राम स्वरूप पाण्डे

पं० राम मूरत द्विवेदी

राजेन्द्र हाई ई० स्कूल हेड पंडित पहलेजपुर

प्रथमबार १०००   सन् १९५८   [मूल्य ।)

अथ तत्व संहिता

श्री गणेशाय नमः

माता पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ, मुमुक्षुणां हितार्थाय। लिख्यते तत्व संहिता ॥१॥

❀ भूमिका ❀

हे प्रिय सज्जनों इस पुस्तक में कर्म उपासना तथा तत्व ज्ञान विषय यथार्थ रूप से संक्षेप में दिखाया गया है। इसमें कोई बात कल्पित तथा अत्युक्ति युक्त नहीं है इसलिये जो मनुष्य मुक्ति के प्रेमी हो अथवा जिन महाशयों को जिज्ञासा होय कि आत्म ज्ञान का वास्तविक तत्वज्ञान का स्वरूप क्या है और परम गति कैसे मिल सकती है। उनको इस ग्रंथ को अवश्य पढ़ना चाहिये और इस ग्रंथ के कथनानुसार चलने से अवश्य मुक्ति मिलेगी इसमें कोई सन्देह नहीं है। जो विद्वान और तत्वज्ञान के प्रेमी होगें वे लोग इस ग्रंथ को आदर करेंगे। जो लोग शास्त्र की मर्यादा को नहीं मानते हैं और रात दिन सांसारिक कार्यों में रत हैं उन महाशयों के देखने योग्य यह ग्रंथ नहीं है। मैं तो कोई पण्डित नहीं हूँ किन्तु जो कुछ महात्माओं के द्वारा मुझे प्राप्त है तथा अपने से जो कुछ मुझे मालूम हो गया है श्रीमानों की सेवा में उपस्थित करता हूँ।

भवदीय

वामन चतुर्वेदी

तत्व विभाग

अथ प्रथम तरंग

तावत गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुका: विपिने यथा नगर्जंति महाकायो यावद् वेदान्त केशरी।

अथ साधने चतुष्टय

हे गुरो प्रथम साधन चतुष्टय को बता दिये जिससे साधक पूर्ण ज्ञान धिकारीहोजाय।

श्री गुरु कहते हैं।

दोहा

अविनाशी आतम अचल जग जातें प्रतिकूल।
वेसो ज्ञान विवेक है सब साधन का मूल ॥१॥
ब्रह्म लोक लों भोग जो चहे सवन का त्याग।
वेद अर्थ ज्ञाता मुनि कहत ताही वैराग ॥२॥
मन विषयन से रोकनो समतेहि कहत सुधीर।
इन्द्रियगण को रोकनो दम भाषत बुध वीर ॥३॥
सत्य वेद गुरु वाक्य है श्रद्धा अस विश्वास।
समाधान याको कहत मन विक्षेप प्रनाश ॥४॥
आतप शीत क्षुधा तृष्णा इनके सहन स्वभाव।
ताहि तितिक्षा कहत हैं कोविद मुनिवर राव ॥५॥

ब्रह्म प्राप्ति अरु बन्धकी हानि मुदा की रूप ।
ताकि चाह मुमुक्षता आषत मुनिवर भूप ॥६॥
अन्तरंग यह आठ हैं यज्ञादिक बहि रंग ।
अन्तरंग धारे त्यजे बहिरङ्ग के संग ॥७॥
इनका अर्थ सुगम है इसलिये विचार लेना चाहिये ।
इति साधनचतुष्टय कथन नाम प्रथम तरंग ।

अथ द्वितीय तरंगः

शिष्य बोला हे गुरो इस पृथ्वी पर जो जन्म लेता हैं और अपने व्यवहार में लगकर सारी जिन्दगी बिता देता । कोई कोई ईश्वर की भक्ति और शुभ कर्म करता है जो क्या कारण है ।

गुरु बोला-श्रवण करो सब के नेत्र की दृष्टि तुल्य नहीं हैं किसी की दृष्टि दूर तक जाती है किसी की दृष्टि समीप के ही वस्तुओं को देखती है और कोई पुरुष समीप दूर को देखता है और दोनों में अन्तर को देखता है । इसी तरह जिसको समीप में ही देख पड़ता है वह यहीं तक शरीर के भोग भोग कर बाल बच्चों स्त्री आदि के सब व्यवहार पर्यन्त तक देखता है । आगे परलोक तक उसकी दृष्टि नहीं जाती यहां ही कुसंग में परके भोग में अशक्त रहकर समय बिता देती है । प्रथम

तो कार्य से ही अवकाश नहीं रहता त्वचा इन्द्रिय से स्त्री के साथ करता है और नेत्रेन्द्रिय से नृत्य आदिक देखता है श्रवणेन्द्रिय से अनेक प्रकार के शब्द सुनता है। घ्राणेन्द्रिय से अनेक प्रकार के वस्तुओं को सूंघता है। रसना रूप इन्द्रिय से अनेक पदार्थों का शुद्ध अशुद्ध स्वाद को जानता है। इन विषयों की प्राप्ति के लिये धन, बल, रूप और विद्या के व्यापार की कामना करता है। जब कामना में बाधा परता है तब क्रोध उत्पन्न होता है तब उन विषयों की अप्रापति होने से बहुत ही अनिष्ट करना पड़ता है तब बुद्धि भ्रान्त हो जाती है इसलिये अनेक प्रकार के पाप कर्म करता है। जिन पापों के फल को भोगने के लिये यमपुरी जाना पड़ता है। छोटे बड़े पापों के मोताविक छोटा बड़ा नरक भी मिलते हैं। नरकों का भोग समाप्त होने पर बीश लाख संख्या वाले स्थावर योनि में किसी का शरीर धारण करना पड़ता है तत्पश्चात् नव लाख जाति वाला जलचरों की जाति में जाना पड़ता है। उसके बाद एगारह लाख कीड़ों की योनि तत्पश्चात दस लाख जाति पच्छीयों की योनि इसके बाद तीसलाख जाति वाले चतुष्पदों की योनि उसके बाद चार लाख जाति वाले मनुष्यों की योनि में जन्म लेना पड़ता है प्रथम तो अति नीच जाति जिसका जल नहीं चलता है उसके बाद शुद्र के यहां जन्म होता है इसके पीछे क्रमसे वैश्य क्षत्रिय तथा ब्राह्मण के यहाँ

जन्म होता है ब्राह्मण के यहा जन्म लेते ही एक पैर स्वर्ग को उठता है अगर अच्छा कर्म करे तो दूसरा पैर भी स्वर्ग को उठता है और अनिष्ट कर्म करते रहने पर पहला पैर भी उतर जायेगा। हे प्रिय शिष्य बहुत दिनों के बाद मनुष्य शरीर प्राप्त किया है अपने को संभारो संभारो जागो जागो स्त्री हो या पुरुष अथवा कोई वर्ण आश्रम होय अपने अपने धर्म पर रह कर भगवत पूजन करो ईश्वर का भजन करो जागो जागो।

॥ इति समीप दृष्टि कथन नाम द्वितीय तरंग ॥

अथ तृतीय तरंगः

अथ दूर दृष्टिः

हे शिष्य अब दूर दृष्टि वालों का वृत्तान्त को कहता हूँ इस संसार में बहुत पुरुष धनवान और सुखी हैं और बहुत पुरुष अनेक प्रकार के दुःख में पड़े रहते हैं इसका क्या कारण है। कोई पण्डित से पूछना चाहिये इतने ही में एक विद्वान पण्डित समीप में आगये उससे नम्रता पूर्वक पूछा गया कौन कर्म करने से लोक तथा परलोक में सुख मिलता है। पण्डित जी कहने लगे हे प्रिय महाशय सुनिये मैं कहता हूँ सुनो—दान करने से जहां जिस योनि में रहता उसको सुख मिलता है।।

तपस्य करने से बल और राज्य की प्राप्ति होती है सुपात्र ब्राह्मण को भोजन कराने से अत्यन्त पुण्य होता है जिस पुण्य से कभी दुःख नहीं होता है यज्ञ करने से राज्य प्राप्त होता है जो पुरुष दूसरे के किये गये यज्ञ में सामिल होता तपस्या करने से बल और राज्य की प्राप्ति होती है सुपात्र ब्राह्मण को भोजन कराने से अत्यन्त पुण्य होता है जिस पुण्य से कभी दुःख नहीं होता है यज्ञ करने से राज्य प्राप्त होता है जो पुरुष दूसरे के किये गये यज्ञ में सामिल होता है वह भी सुख का भागी होता है जो तीर्थ करता है सो अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।

जो किसी भी वस्तु की कामना करके तीर्थ करता है उसकी सभी कामनायें पूर्ण होती है इसके लिये अनेक धर्म हैं। संयम के साथ जो मनुष्य प्रेमपूर्वक राम नाम का उच्चारण किया करता है उसे भक्ति मुक्ति तथा आत्मज्ञान की प्राप्ति होता है इसके बाद शिष्य ने पूछा कि आपने जो कहा कि संयम के साथ राम नाम का उच्चारण करना तो संयम किस वस्तु का नाम है। गुरु ने कहा। सुनो— प्रथम तो सत्य बोलना धर्मानुसार धन का उपार्जन करना पवित्र रहना शुद्ध अशुद्ध का विचार करना निषिद्ध भोजन नहीं करना पापों के साथ खान पान तथा और व्यवहार नहीं करना भगवान का कथा वार्ता में प्रेम रखना किसी जीव को दुख नहीं देना धुम्र

पान नहीं करना चिलम बिड़ी शीगरेट का व्यवहार करने को शास्त्र में मना लिखा है प्रमाण विष्णु पुराण में लिखा है कि

श्लोक—धुम्रपान रतं विप्रं दान पात्रं करोनियः
सदाता रौखं याति सविप्रः ग्राम सूकर

माता पिता की सेवा करना गौ का तथा अतिथि का सत्कार करना इन सब कार्यों को संयम करते हैं जो कुछ पुण्य कार्य करना वह अपने मुख से नहीं कहना और मनमें पुण्य का अहंकार नहीं करना। श्री अष्टावक्र ऋषि महाराज जनक जी से कहते हैं कि–

श्लोक

यस्याभिमानः मोक्षेऽपि देहेऽपि ममता तथा।
न चाज्ञानी नवायोगी केवलं दुःख भागसौ॥

जैसे बिना संयम किये रोगी को औषधि का गुण नहीं होता है उसी प्रकार राम नाम रूप औषधि बिना संयम गुण नहीं दिखा सकता क्योंकि सभी मनुष्य राम नाम को जपते हैं लेकिन किसी की दशा सुधरी नहीं दीख पड़ती कारण इसका वही है जो जो उपर लिखा हुआ है।

श्लोक

यथा पांशुव्याप्ते मलिन मुकुरे श्वेत कपिशौ।
विवकौ दृश्येते कथमपि न चालोक शतशः॥
तथात्मा नात्मानौ मल मति विविकौ न भवतः।
तत् स्त्यक्त्वा कामं यजन भजनादिं कुरु हरेः॥

इति बाह्य दृष्टि (दूर दृष्टि) कथन नाम तृतीय तरंगः ३

अथ चतुर्थ तरंगः ।

अन्तर दृष्टि ।

व्यष्टि दृष्टि तो कह गये अर्थात ब्रह्माण्ड का रूप जो शरीर उसके अन्तर की जो बातें है उसको कहता हूँ— अब समष्टि दृष्टि को कहता हूँ ।

एकोऽहम बहुस्यामिः प्रथम ब्रह्म में यही संकल्प हुआ अर्थात् मैं एक से बहुत रूप को धारण करूं ब्रह्म कैसा है जो सत्य होने के कारण कभी नाश को प्राप्त नहीं होता चैतन्य रूप होने से कभी अचेतन नहीं हो सकता आनन्द रूप होने से कभी दुख को प्राप्त नहीं होता है सर्वव्यापक होने से कभी कोई स्थान उससे खाली नही है इन ब्रह्म के भीतर सारा ब्रह्मण्ड पूर्ण रूप से स्थित है इसके संकल्प से त्रिगुणात्मक माया प्रकट हो गई रजो गुण, तमोगुण और सत्वगुण इन तीनों गुणों की साम्यावस्था को ही सूक्ष्म प्रकृति अथवा माया कहते हैं प्रथम तमोगुण से अहंकार हुआ उससे शब्द गुण सहित आकाश उत्पन्न हुआ आकाश से स्पर्शगुण सहित वायु, वायु से रूप गुण सहित तेज तेज से रस गुण सहित जल जल से गंध गुणसहित पृथ्वी की उत्पत्ति हुई ।

प्रकृति—अस्थि मांस नाड़ी त्वचा, रोम ये पाँच वस्तु पृथ्वी से उत्पन्न हुआ । शुक्र, शोणित, मुत्र, लार, स्वेद ये पाँच जल तत्व से उत्पन्न हुआ ।

क्षुधा, पियासा, आलस्य, कान्ति, निन्द्रा ये पांच तेज से हुआ। धावन, प्रसारण, संकोचन, चलन, उच्छलन ये पांच वायु से हुआ। शिरो, अवकाश, कण्ठावकाश, उदरावकाश, हृदयावकाश और कट्यावकाश ये आकश से उत्पन्न हुआ।

आकाश से सत्व अंश से श्रोत्र इन्द्रिय रजो अंश से वाक् इन्द्रिय वायु का सत्व अंश से त्वचा इन्द्रिय रजो अंश से पाणि इन्द्रिय अग्नि के सत्व अंश से चक्षु इन्द्रिय रजो अंश से पाद इन्द्रिय जल का सत्व अंश से रसना इन्द्रिय रजो अंश से लिङ्ग इन्द्रिय इस प्रकार दशों इन्द्रियों की उत्पति होती है ये इन्द्रियां स्थूल शरीर पूर्ण रूप से तैयार हो जाता है स्थूल शरीर में ७२००० नाड़ियां रहती हैं।

पांच तत्वों का रजो अंश से पांचो प्राणों की उत्पति होती है उनका नाम इस प्रकार का है। प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान इनके समान नामक प्राण नाभि के सामने अन्न जल ठहरता है जहां पर जठराग्नि रहता है वहां रहकर अग्नि को दीप्त करता है व्यान वायु अन्न के रसों लेकर सभी नाड़ियों में पहुँचाता है कहीं कफ की नाडी है कही पीत्त की नाडी है कहीं वार्य और रक्त की बहाने वाली नाडी हैं। उदान वायु कही पचने में अजीर्ण हो जाता है तो उपर डकार से शुद्ध करता है। अपान वायु जल के रस निकालने पर मल मूत्र को नीचे फेकता है प्राण वायु जो हृदय में

जो कमल का स्थान है वहाँ से आकर नासिका के द्वारा बारह अङ्गुल पर्यन्त बाहर निकलकर बाहर से शुद्ध वायु को लेकर पुनः हृदय में प्रवेश करताहै प्राणो यही व्यापार है ऐसब अपने कामों से कभी नही चूकते अगर मनुष्य किसी भी हालत में होय। पांच तत्वों का तत्व अंश से अन्त करण की उत्पति हुई। कार्य भेद से अन्तः करण चार प्रकार का होताहै जिसका चार व्यापार है मन, बुद्धि, चित और अहकार हृदय में जो कमल स्थानहै। जहाँ पर आत्मा का निवास स्थान कहा गया है। सबसे उपर बुद्धि का स्थान है इसी तत्व के प्रभाव से प्रकृति जो माया है वह चौराशी लाख योनियों को उतपन्न किया है जब सम्पूण शरीर को रचना होगई किन्तु उसमें चेष्टा करने की शक्ति नही हुई तब ब्रह्मा ने प्राथना करने लगे तुम्हारे रहने के लिये अनेक मन्दिरों की रचना करदिया लेकिन आप उसमे निवास कीजिये। इसके बाद देवता लोगोंने प्रार्थना किये कि हमलोगों के रहने के लिये शरीर में स्थान दीजिये। ब्रह्मा ने जवाब दिया आप लोगों के रहने के लिये इन्द्रिय स्थान है जिस इन्द्रिय आप लोगों को पसंद होय उसइन्द्रिय में आप लोग रहें तब देवताओं ने सूक्ष्म रूप से इन्द्रिय में स्थान बनाकर रहने लगे। नेत्र में सूर्य कान में दिशायं नासिका में अश्विनी कुमार जिह्वा में वरुण मुख में अग्नि त्वचा मे वायु हाथों

में इन्द्र लिङ्ग में मित्रा वरुण गुदा में यमराज दोनों पैरों में विष्णु बुद्धि में ब्रह्म भवन में चन्द्रमा चित में वासुदेव अपनार निवास स्थान बनाया। इस प्रकार दशो इन्द्रियों का दश देवता इन्द्रियों के स्वामी कहे जाते हैं और जो तुलसी कृत रामायण में लिखाहै कि चौ०- इन्द्रिय द्वार झरोखन नाना, तंह तंह सुर बैठे हों करि थाना। इसका भी भावार्थ यही है कि जो कि ऊपर लिखा है।

इसके बाद आत्मा ने अपने रहने के योग्य स्थान विचारने लगे। हृदय कमल में जहां अन्तःकरण रहता है जिसमें सूक्ष्म रुप में बुद्धि रहतीहै उसी स्थान में आत्मा ने सत्चित् आनन्द रूप से ब्रह्म के आभास रूप होकर बुद्धि में निवास किया। आत्मा जब बुद्धि में निवास किया सब इन्द्रियां चैतन्य हो गयो और सबों ने अपना अपना विषयों को ग्रहन करने लगे। अन्तः करण की चार वृतियां है मन बुद्धि चित और अहंकार। आत्मा की सत्ता पाकर बुद्धि निश्चय करतीहै मन सकल्प विकल्प करता है चित् ने अनेक वस्तुओं का चिन्तन करती है और अहंकार ने सर्व व्यापक परमात्मा को एक देशी मानकर अहंकार करता है इन चारों अन्तः करणों ने अपनी शक्ति पर विचार नही किया कि हम लोग किसकी शक्ति से बाहरी चेष्टायें करते हैं इसी कारण हमलाग जीवधारी बने हैं। अब मन का विशेष

कार्य कहतेहैं मन आत्मा की शता पाकर अपने कार्य द्वारा आत्मा को आच्छादित करके अपने को कर्त्ता भोगता तथा सुख दुःख का भागी मानने लगा। ग्रहण त्याग नरक स्वर्ग का पानेवाला बनगया मन प्रत्येक इन्द्रियों के साथ रहकर सब इन्द्रियों के विषयों को ग्रहण करता है।

प्राणों को छोड़ कर सभी इन्द्रियों को साथ लेकर हृदय में आकर सुषुम्ना नाड़ी में आकर तमोगुण में लीन होकर फिर बाहर नेत्र में आ जाताहै सब विचार मनहीं पर है मन जब भोगों से विरक्त हो जाताहै और निवृति मार्ग का अवलम्बन करता है तब संसार से मुक्ति होती है किसी महात्मा ने कहा ही है कि— मनः एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः। इत्यादि रामायण में श्री तुलसीदासजी कहते हैं।

चौ०—ईश्वर अंश जीव अविनाशी चेतन अमल सहज सुखराशी।
सोमाया बस भउ गुसाईं बन्धउ कीर मर्कट की नाई॥

गीता में श्लो० भगवान कहते हैं—नतद् भासयतेसूर्यो नशशांको नपावकः यद् गत्वान निवर्तन्ते तद् धाम परम मम ममैवांशो जीवलोके जीवोभूतः सनातनः मनः षष्ठा नीन्द्रि पर प्रकृतिस्थानि कर्षति।

शिष्य ने पूछा कि हे गुरो इस शरीर में जो पांच प्रा

शब्द हैं उनका वर्णन करिये गुरुजी कहते हैं सुनो। अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय आनन्दमय मे पाँच कोश है।

अन्न से बना हुआ और अन्न ही से पालन होने वाला अन्न के कारण रूपणोष्ठथि बोली न होने वाली यह स्थूल शरीर ही अन्नमय कोश है इस शरीर के भीतर पांच कर्मेन्द्रियों के साथ पाँच प्राणों को प्राणमय कोश कहते हैं। प्राणमय कोश के भीतर मनोमय कोश रहता है पाँच ज्ञानेन्द्रियों के साथ मन को ही मनोमय कोश कहते हैं मनोमय कोश के भीतर विज्ञानमय कोश रहता है।

ज्ञानेन्द्रियों के साथ बुद्धि को विज्ञानमय कोश कहते हैं वहां मन नहीं पहुंचता है जहां पर हृदय कमल पर आत्मा का निवास है आत्मा का प्रकाश सर्वत्र फैला हुआ है वहां बुद्धि अज्ञानता से सभी बातों का निश्चय किया करती है इसलिये विज्ञानमय कोश के भीतर आनन्दमण कोश है। पांचो कोश का कारण जो आनन्द मानना तिस आनन्द में जो आनन्द तिसकी आनन्दमय कोश कहते हैं आत्मा पांचो कोशों से भिन्न है जिस कोश के साथ रहता है उसी के रूप दिखाई पड़ता है जैसे शुद्ध स्फटिक जिस रंग वाले पदार्थ के साथ रहता है वैसा ही उसका रूप देख पड़ताहै। यथार्थ में इस प्रकार का देखना भ्रमात्मक ज्ञान है।

उसी तरह आत्मा की दशा है। पांचो कोशों का धर्म है कि जन्म मरण अन्नमय कोश का धर्म है, क्षुधा पियासा इत्यादि प्राणमय कोश का धर्म है, मनोमय कोश का धर्म हर्ष शोक है, निश्चय करना विज्ञानमय कोश का धर्म है, आनन्द का अनुभव करना ही आनन्दमय कोश का धर्म है। आत्मा इन पांचो से भिन्न हैं पांचो संचालन कर्ता है ऐसा मानने से मुक्ति मिलती है।

इति सृष्टि कथनं नाम चतुर्थ तरंग

अथ पंचम तरंग

शिष्य पूछता है, कि हे गुरो सभी प्राणियों का शरीर एक ही तत्व का होता है, या उसमें न्यूनाधिकतत्व होते हैं। गुरु ! जिनके शरीर में पृथ्वी का अंश आधा रहता है, और आधे में शेष तत्व रहते है। उन प्राणियों का निवास स्थल पृथ्वी है यानी वह पृथ्वी पर बसते हैं। जिस शरीर में जल तत्व आधा रहता है आधे में शेष तत्व रहते हैं उस जीव का निवास स्थान जल में होता है। जिसके शरीर में अग्नि तत्व अधिक रहता है वे प्राणी अग्नि को अधिक चाहते हैं जैसे चकोर इयतादि पक्षी। जिस में वायु तत्व अधिक रहता है वे वायु में अधिक रहते हैं, जैसे पक्षियां। जिस शरीर में आकाश तत्व अधिक रहता है वे आकाश में निवास करते है

जैसे तारा देवता गण इत्यादि ।

अब जीव और ईश्वर में जो भेद है जैसा कि गीतादि-सद ग्रन्थों ने कहा है उसको कहता हूँ ।

अध्यात्म रामायण में रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा है ।
एकात्म कत्वा जगती न सम्भवे तथा जहल्लक्षणता विशेषतः ।
सोऽयं पदार्थो विव भाग लक्षणा, युज्येत तपदयो रदोयतः ॥

अर्थः - रामचन्द्र ने कहा, हे लक्ष्मण वेद श्रुति वाक्य सम्पूर्ण भेद रहित एक समान चेतन एवं सत्य है, अतः ब्राह्मण विषयक देश काल वस्तु का परिच्छेद द्वारा जीव और ईश्वर की कल्पना हुई है ।

इसका मूल अज्ञान है जिसमें दो शक्तियां हैं एक माया दूसरी अविद्या । माया के तीन गुण हैं । (१) सत्व गुण (२) रजो गुण (३) तमो गुण । इन्ही तीनों गुणों को देश कहते हैं उत्पति, पालन, और संहार तीन काल हैं । विराट् हिरण्य गर्भ, अव्या कृति तीन वस्तुयें है माया में परिच्छेद हैं । इनमें जो ब्रह्म का आभास है उसकी ईश्वर यह संज्ञा है । इसी प्रकार अज्ञान के अविद्या द्वारा ब्रह्म में देश काल और वस्तु का परिच्छेद है । वहां नेत्र, कण्ठ, हृदय यही देश है । जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, ये काल हैं ।

विश्व, तैजस, प्राज्ञ ये वस्तु हैं । इस अविद्या में जो परिच्छेद है । उसमें जो ब्रह्म का अभास पड़ता है वही जीव है । इस प्रकार अज्ञान का आश्रय माया और अविद्या द्वारा शुद्ध स्वरूप सर्वाधिष्ठान में जीव एवं ईश्वर दोनों कल्पना है ।

जीव ईश्वर की एकता केवल भाग त्याग लक्षणा द्वारा हो सकती है।

भाग त्याग लक्षणा के लक्षण।

माया के छः नाम एवं उनके छः कार्य हैं।

माया के नाम (१) प्रकृति (२) अविद्या (३) अज्ञान (४) माया (५) प्रधान (६) शक्ति

(१) अपने से बाहर सारी सृष्टि को रचकर दीखा देना यह प्रकृति का कार्य है। जैसे गीता में लिखा है।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणाः कर्माणि सर्वशः इति॥

(२) विद्या के सामने नहीं ठहरना ही अविद्या कार्य है।

(३) अपनी शक्ति से दूसरे के रुप को विस्मृत करा देना अज्ञान का कार्य है।

(४) सत्य में असत्य और असत्य में सत्य का प्रतीति कराना माया का कार्य हैं।

(५) माहा प्रलय में सम्पूर्ण संसार को अपने में रख लेना प्रधान का कार्य है।

(६) अपनी ही प्रभाव को प्रदर्शित करना ब्रह्म को ढक लेना, ब्रह्म के आश्रित रहना अनादि एवं अविनाश शक्ति कार्य हैं। इनके प्रभावों से रहित प्रकाश स्वरूप चेतन सर्वान्तर वासी एव पूर्ण ब्रह्म को अभिन्न समझना ही भाग त्याग लक्षण है।

जीव ईश्वर भेद कथन नाम षष्ठ तरंग

अथ सप्तम तरंग

प्रश्न ? शिष्य ने कहा, हे गुरो ओंकार का स्वरुप बताने की कृपा करें। गुरुः हे शिष्य सुनो, राम गीता का वचन है।
विश्वं त्वकारं पुरुषं विलापये, दुकार मध्ये बहुधान्यव स्थितम्।
ततो मकारे प्रविलाप्य तैजसं द्वीतीय वर्ण प्रणवस्य चान्तिमें॥
मकार मप्यात्मनि चिद्धने परे
विलापये आज्ञमवीह कारणम्। सोहम् ऽस्हम सदा विवुक्तिम
द्विणम दङ मुक्त मुपाधि कोमलः॥

हे शिष्य ओम् यह तीन मात्रावों से बना है।

अ, उ और म इनका अर्थ इसी प्रकार है (अकार) अ, का जाग्रत अवस्था विश्वाभिमानी आत्मा स्थूल भोग ब्रह्मा देवता वैश्वानी आत्मा वहिः ऽज्ञासत्व गुण प्रधान है। (२) उकार मात्रा की स्वप्नावस्था तैजसाभिमानी विष्णु देवता हिरण्य गर्भ आत्मा विरल भोग अन्तर प्रज्ञा और रजो गुण प्रधान है। मकार मात्रा की अवस्था सुषुप्ति है प्रज्ञाभिमानी रुद्र देवता प्रकृति आत्मा आनन्द भोग तमो गुण प्रधान है।

आकार मात्रा से उत्पन्न वस्तु उकार मात्रा में लय कर देना चाहिये और उकार मात्रा से उत्पन्न वस्तु को मकार में लय करना चाहिये। यह सुषुप्ति है। उस सुबुद्धि चन्द्राकार शक्ति में लय कर सम्पूर्ण शक्ति सहित अर्द्ध मात्रा जो विन्दु है

उसमें लय करो—तब सोहम् सोहम् जैसे सूक्ष्म रुप आत्मा ब्रह्म स्वरुप बिन्दु शक्ति द्वारा चन्द्राकार स्वप्न और ॰ु॰से जाग्रत हुआ है। जैसा कि विनय पत्रिका में तुलसीदास ने लिखा है:—

शून्य भिति पर चित्र रंग तनु बिनु लिख्यो चितेरो।
धोवें मिटै न मरै भीति दुख पाइय यह तनु हेरे॥

उसी प्रकार ओंकार के अन्तर में ही अखिल संसार का निवास है। अतः ओंकार जप का अत्याधिक महत्व है।

इति ओंकारार्थ कथन नाम सप्तम तरंग

अथ अष्टम तरंग

शिष्य, हे गुरो कारण शरीर किसे कहते मुझे स्पष्ट समझाने की कृपा करें। उत्तर, अज्ञान ही कारण शरीर है। क्योंकि जन्म मरण दुख सुख भाग्याभाग्य की जड़ अज्ञान ही है। अज्ञान ही से कामना का प्रादुर्भाव होता है और कामना से कर्म की उत्पति होता है। इन सबों का कारण अज्ञान ही है। अज्ञान का नाश ज्ञान से होता है। इसलिये ज्ञान प्राप्त का उद्योग मानव मात्र का परम कर्तव्य है।

तत्व विभाग ब्रह्माण्ड रुप शरीर में दीखाया गया है बिना इसके जाने आत्मा और अनात्मा की विवेचना नहीं हो सकती। अपने स्वरुप का ज्ञान ही मुख्य ज्ञान है। और कहीं जानना अज्ञान है। ज्ञान सहकारी बहुत सेनक हैं और

अज्ञान के सैनिक भी बहुत है। और अपने २ सैनिकों के साथ इस देह रूप किला में राम और रावण जैसा विद्यमान है (अर्थात) अज्ञान अपने सैनिकों के साथ रावण और ज्ञान राम है।

शिष्य पूछता है। हे गुरोः आपने शरीर रूप ब्रह्माण्ड में तत्व विभाग भिन्न २ प्रकार से पृथक २ कर के दीखा दिया है। अब ज्ञान और अज्ञान के विषय में कहिये कि इनके नाश और उत्पति कैसे होती है। यह जीवात्मा किस प्रकार संसार से परि जा सकता है।

उतर गुरु का। शरीर रूप ब्रह्माण्ड ही अवध पुरी और दशों इन्द्रियों को बश करने वाला दशरथ वहां का राजा हैं। वेद गुरु और शुभ कर्म ही मन्त्री सुमन्त है। पुत्रवती स्त्री निवृति और विषय दोष दृष्टि भक्ति और ज्ञान भगवान राम-चन्द्र है जिसकी माता निवृति है और वैराग्य भरत हैं जिनकी जननी विषय दोष दृष्टि है। आत्मा सत्य जगमिथ्या को लक्ष्मण जानना चाहिये। सत्या सत्य विचार ही शत्रुघ्न हैं इनकी माता भक्ति है। विश्वास रुपी विश्वामित्र ने अपने यश की रक्षा के लिये ले गये। लोभ भय और भ्रान्ति ही राक्षसी है। ज्ञान रूपी राम द्वारा जिसका नाश होता है।

कामना ही विघ्न करने वाले राक्षस है। जो ज्ञान के समक्ष टीक नहीं सके और यज्ञ की रक्षा हुई। क्षमा रुपी अहिल्या ज्ञान रुपी राम से परिष्कृत हुई। इस संसार रुपी जनकपुर में निर्देहाभिमानी पुरुष ही राजा विदेह हैं।

जिससे शान्ति रुपिणी सीता का जन्म हुआ है।

अहंकार रुपी धनुष ही उसके विवाह के लिये रखा गया है। जिसको तोड़ने के लिये अनेक कामना युक्त पुरुष आये पर नहीं तोड़ सके। इसके बाद ज्ञान रुप रामचन्द्र के अज्ञान रुप धनुष तोड़ देने पर शान्ति रुपणी सीता ने सुलक्षमण रुपी माला को रामचन्द्र के गले में पहना कर पिता के भवन में चली गयी। अनन्तर अवधपुरी में खबर दी गयी और दशरथ जी ने अपने पुत्रों के साथ जनकपुर आकर चारो भाईयों का विवाह किये। ज्ञान रुपी राम का विवाह शान्ति रुपी सीता के साथ, विवेक रुपी लक्ष्मण का नम्रता रुपी उर्मिला से, वैराग्य रुप भरत का वृति रुप माण्डवी और विचार रुप शत्रुघ्न का विवाह समता रुपिणी श्रुती कीर्ति के साथ विवाह हुआ। विषय प्रेम रुप परशुराम ने राम को भय दीखलाकर पीछे राम के प्रेमी बन गये। अनन्तर विदा होकर रामचन्द्रादिको ने अवधपुरी में विश्राम किये।

तत्पश्चात् जीव रुपी दशरथ ने ज्ञान रूपी रामचन्द्र को राज्याधिकार देना निश्चित किया ही था कि कैकई ने कहा हे राजन पहले वैराग्य को ही राज्य दीजिये। पीछे ज्ञान को दीजियेगा।

यह सुनकर जीव रुप दशरथ मूर्छित हो गये और ज्ञान रुप राम विवेक रुप लक्ष्मण शान्ति रुपिणी सीता को साथ लेकर अखण्ड रुप रथ पर चढ़कर निर्भय रुप बन को चले

गये। ब्रह्म विद्या रुप गंगा के तीर पर जिज्ञासा रूप केवट से मिले और गंगा पार किये और उपराम कर्म से पार होना रुप भर द्वाज से मिलकर इङ्गला, पिङ्गला, सुषुमातानाड़ी रुपी त्रिवेणी में स्नान कर दम रुप बालमिक चित्रकुट रूप कुरुस्थ पद में स्थित हुए। कर्म रूप जयन्ता को अक्रिय रूप बाण से मान भङ्गकर अकर्म रुप अचि मुनि के आश्रम पर गये। जहां उनकी स्त्री घृति रुपिणी अनसूइया ने शान्ति रुपी सीता को सतीत्वका उपदेश किया। इसके विकर्म रुप विराध राक्षस को मार कर ज्ञान स्वरुप रामचन्द्र सम रुपी सुतीक्षण ऋषि के आश्रम पर गये। द्वैता द्वैत रहित ही अगस्त्य मुनि हैं। पति के हृदय रुप पंचबटी में निवास किये। शान्ति भंग करने के लिये दुष्टा तृस्ना ज्ञान रुपी राम के पास आयी और लोभ एवं भय दिखायी फल स्वरुप उसके नाक कान काट लिये गये। और उसके सहायक भी विनष्ट हो गये। इसके बाद अज्ञान रुप रावण से सभी बातें तृष्णा ने कहा। उन्होंने काम स्वरुप मारीच को पठाय काम रुप मारीच को सुवर्णवत नाम एवं रूप को सत्य जानकर उसके पीछे ज्ञान रूप राम दौड़े।

उसी अज्ञान रुप रावण सीता रुपी शान्ति को लेकर भाग चला और मार्ग में धर्म रुप जटायु को मार कर आशा आशा रूपी समुद्र को पार कर शंका रूप लंका को अशोक वाटिका में सीता को रख दिया। अनन्तर ज्ञान रूप राम

शान्ति रुपिणी सीता को अपहृत जानकर वैराग्य रुप लक्ष्मण के साथ जंगलों में खोजना प्रारम्भ किये। उसी वन में सत्संग रुपी हनुमान से भेंट हुई। उनके कथनानुसार सन्तोष रुप सुग्रीव से मित्रता कर लोभ रुप बाली को रामचन्द्र ने मारा और सन्तोष रुप सुग्रीव राजा और अक्रोध रुप अंगद को युवराज बनाये। तत्पश्चात् तितिक्षा रुपिणी तारा को सन्तोष रुप सुग्रीव को समर्पित कर दिया। और स्वयं शुद्ध चित रुप स्फटिक पर निवास किया। अनन्तर सत्संग रुप हनुमान आदिक बानरों को शान्ति रुपिणी सीता की खोज करने के लिये पठाया। सत्संग रुप हनुमान सतोगुण स्वरुप सम्पाति से खबर पाकर आशा रुपी समुद्र का पार कर लंका में चले गये। तदन्तर शंका रुप लंका में शान्ति रुपिणी सीता भेट हुई। उन्होंने शंका रुप लंका को जलाकर सम्पूर्ण समाचार रामचन्द्र को सुनाये।

रामचन्द्र ने आशा रुप समुद्र में लीला रुप सेतु बांधकर शंका रुप लंका में प्रवेश किया और ज्ञान रुप रामचन्द्र अपने सैनिकों को यथा योग्य युद्ध करने का आदेश दिया।

अज्ञान की सेना का वर्णन

पांच तत्व से बना हुआ इस शरीर रुप ब्रह्माण्ड में चारो तरफ से लगी हुई आशा ही समुद्र है। सत्या सत्य सन्देह रुप की शंका रुपी लंका में अज्ञान रुप रावण निवास है। क्रोध रुप कुम्भकरण उसका भाई शुभाशुभ बुद्धि रुपिणी मन्दोरी

उसकी स्त्री और राग रूप मेघनाद उसका पुत्र है।

अनेक अशुभ कर्म रुप सभी राक्षस हैं। निषिद्ध कर्म रुपणी सम्पूर्ण राक्षसी हैं। सम्पूर्ण अज्ञान रुपी रावण की सेवा करते हुए शुभ कर्मों में विघ्न करते हैं। इस लिये विहित कर्म रुप विभीषण अज्ञान रुप रावण के भय से ज्ञान रुप राम की ओर मिल गये। अज्ञान रुप रावण अपने परिवारिक सेना को देख कर गर्व कर बोला तुम लोग ज्ञान रुपी राम की सेना को यहाँ प्रवेश मत करने दो और राम के सैनिकों को खा जाओ।

विवेक रुप लक्ष्मण राग रुप मेघनाद के साथ युद्ध करना आरम्भ किया दोनों ओर कुछ काल युद्ध होने के बाद राग रुप मेघनाद ने विवेक रुप लक्ष्मण को मूर्छित किया। इसके बाद ज्ञान रुप रामचन्द्र के मन में बहुत दुःख हुआ। ज्ञान रुप राम ने विवेक रुप लक्ष्मण को जगाया किन्तु लक्ष्मण की मूर्छा नहीं टूटी इसके बाद विहित कर्म रुप विभिषण ने बताया कि लंका में एक सुषेण नाम का वैद्य रहता है वह औषधि के द्वारा लक्ष्मण की मूर्छा को दूर कर देगा इसके बाद सतसग रुप हनुमान जी ने सुषेण वैद्य को बुलाया और वैद्य ने तत्व भक्ति रुप औषधि देकर लक्ष्मण की मूर्छा दूर की मुर्छा टूटने पर विवेक रुप लक्ष्मण ने राग रुप मेघनाद को वध किया। ज्ञान रुप रामजी ने क्रोध रुप कुम्भ कर्ण को मार गिराया। इसके बाद अज्ञान रुप रावण की सेना राम की सेना से पराजित हुये युद्ध स्थल को छोड़ भाग पराई। रावण

के बड़े बड़े सैनिक मारे गये रावण ने रामचन्द्र से कहा कि जो वस्तु प्रत्यक्ष रुप में दिखाई पड़ता तथा प्रत्येक इन्द्रियों से ग्राह्य है उस वस्तु को असत्य कैसे कहा जाय। तब रामने कहा देखो अस्ति भाति प्रिय अप्रिय आत्मा के प्रति है। नाम रूप माया के प्रति है ये दोनों ही नाशमान है। जैसे किसी कवि ने कहा है कि:—

रवि कर नीर बहै अति दारुन मगर रूप तेही मांही।
बदन हीन सो ग्रसै चाराचर पान करन जिन जांही॥

इसी तरह तुम सत्य है जैसे अन्धकार देखने में सत्य के समान प्रतीत होता है। किन्तु सूर्य के प्रकाश के सामने उसेकी पता नहीं लगता उसी तरह ज्ञानरुप मेरे सामने तुम है। क्यों कि ज्ञान के सामने अज्ञान कभी नहीं रह सकता इस प्रकार शब्द रुप बाण से रावण को मार दिया। तब विहित कर्म रुप विभिषण को राज्य दिया और विजय पाकर सतसंग रूप हनुमान आदिक बानरों के साथ शान्ति रूपिणी सीता को पाकर अपनी राजधानी अयोध्या में आकर अपने भाईयों के साथ राज्य करने लगे। इस प्रकार ज्ञान रूप राम राज्य में सभ प्रजाओं को सुख प्राप्त होता है।

इति ज्ञाना ज्ञान युद्ध वर्णन नाम अष्टम तरंग।

अथ नवम तरंग

हे गुरो आपने बहुत ही विचित्र और गुप्त कथा सुनाई अब राम नाम के जप का माहात्म कहिये। जिससे भक्त संसार रूप समुद्र से पार हो सकता है।

गुरु महाराज कहते हैं सुनो, जप चार प्रकार का होता है, बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती, उपांशु यहां मन का काम है। मन में उच्च स्वर से नाम को जपे जब तक मन स्थिर होय। तब ओष्ठ को बन्द कर के मध्यमा वाणी से जपे जब तक मन स्थिर होय। तब पश्यन्ति वर्णों का जप करे। जब नासिका से स्वर ऊपर जाय तो रा शब्द का उच्चारण किया करे और नासिका के स्वर से नीचे उतरे तब, म, शब्द का उच्चारण करे मन को उसमें स्थिर करे, तब मन की चंचलता छूट जायेगी। तब उपांशु जप करे आप ही आप आत्मा और मन की एकता हो जाएगी। तब संसार का कोई काम शेष नहीं रहेगा। सम्पूर्ण कार्यों की समाप्ति हो जाएगी। जैसा कि निराकार मिमांसा दर्शन में लिखा है सू (भक्तिर्भवति चितैक तानसा सू इ १ दूसरी कोई विधि कही भी जप की नहीं लिखी बिना विधि पूर्वक जप किये जप का कोई फल नहीं होता अगर भले ही सम्पूर्ण जीवन जप करने ही में बिता दे क्योंकि यह बात प्रत्यक्ष देखी जाती है। इसमें शास्त्र का प्रमाण का कोई आवश्यकता नहीं है।

इति राम नाम जप माहात्म्य विचार नाम नवम तरंग

अथ दशम तरंग

शिष्य बोला हे गुरो मैने सुना है कि सात भूमिकायें होती है। उनका पूरा रूप से विस्तार के साथ कहिये श्री गुरु महाराज कहते है।सुनो पहले सातो भूमिकाओं का नाम कहते है १ शुभ इच्छा २ सुविचारण ३ तनुमानसा ४ सत्वाप्रति ५ असशक्ति ६ पदार्था भाविनी ७ तुरीया यही सातो भूमिकाओं का नाम है। अब सातों को लक्षण कहता हूं सुनो प्रेम पूर्वक ईश्वर की कथा श्रवण करना और ईश्वर का गुण गान करना प्रेम पूर्वक पूजनादिक करना यही प्रथम भूमिका कही जाती है।

दूसरी भूमिका

अपने को तथा ईश्वर को और संसार को विचार करते रहना कि तीनो पदार्थों का स्वरूप यथार्थ में क्या है और तत्वतः इनका सम्बन्ध क्या है इसको ही दूसरी भूमिका कहते है।

तीसरी भूमिका

यह शरीर में रहने वाला तथा उसको संचालन करने वाला आत्मा का स्वरूप क्या है, जो आत्मा शरीर में निवास करता हैं वही इस शरीर को चेष्टावान् बना रहा है अर्थात् शरीर मे जो ये चेष्टायें देख पड़ती हैं वे आत्मा की सत्ता से होती है इत्यादि विचार के द्वारा मन को स्थिर करे इसको तनुमानस्य कहते हैं।

चौथी भूमिका

नित्य ही अपने को अनुभव द्वारा निश्चय करे कि मैं शरीरादि सें अतिरिक्त ब्रह्म हूँ शरीर नही हूं इसको सत्वापत्ति कहते हैं।

पांचवी भूमिका

आत्म स्वरूप को मन मे दृढ़ निश्चय करके मैं रूपवान हूं, मैं बलवान हूं, सुखी हूं तथा मैं दुःखी हूँ अमुक वर्ण तथा अमुक आश्रम हूं इस देहाभिमान को छोड़ दे इसको असंशक्ति कहते हैं।

छठी भूमिका

विद्या धनादिक पदार्थ जितने बुद्धि द्वारा निर्मित है सभी नाशमान तथा असत्य है केवल आत्मा ही सत्य रूप से नित्य है इसको छठी भूमिका कहते।

सातवीं भूमिका

संपूर्ण संकल्पो को रोक कर अपने को चेतन्य रूप निश्चय करलेना यही ७ वीं भूमिका है। जैसा कि किसी महात्माने कहा है श्लो०
योग वासिष्ठ उतरार्द्ध प्रथम सर्ग में देखो।

अथ एकादश तरंग

अब भक्ति का स्वरुप कहते है

भक्ति का दो स्वरुप है, एक भेद तथा दूसरा अभेद। भेद भक्ति उसको कहते हैं जो कि ईश्वर को एक देशी शरीर धारी तथा अपने आत्म स्वरुप से भिन्न मान कर भक्ति की जाती है। उस भक्ति से तीन प्रकार की मुक्तियों में से कोई मुक्ति मिलती है। सालोक्य (अपने इष्टदेव के लोक में जाना) सामीप्य (अपने इष्टदेव के समीप में रहना) सारुप्य (अपने इष्टदेव के स्वरूप हो जाना) भेद भक्ति का यही फल उस भक्त को मिलता है।

अब अभेद भक्ति को कहता हुँ. अपने इष्टदेव को सर्व प्राणियों के शरीर में निवास करने वाला सर्व व्यापक और सब का आत्मा है और मेरा आत्म स्वरूप है। ऐसा जानकर भक्ति करता है। उस भक्त को अभेद भक्ति तथा पराय भक्ति भी कहते हैं। उस भक्ति का फल सायुज्य मुक्ति है जो कि भक्त को अवश्य मिलती है। यथार्थ में दोनों ही राम की भक्ति है अपने समझ की बात है।

अब ज्ञान का भेद कहते हैं। ज्ञान दो प्रकार का होता है। एक वृति ज्ञान और एक स्वतः ज्ञान। वृति ज्ञान उसको कहते हैं जो बुद्धि से होता है। पंडित होना सम्पूर्ण व्यवहार को जान लेना पढ़ना विद्या में प्रवीण तथा करना कौशल इत्यादि क्रिया से वृति ज्ञान के द्वारा होती है उसको वृति ज्ञान कहते हैं।

अब स्वतः ज्ञान का स्वरूप को कहते है। सुनो अपना रूप जो चैतन्य आत्मा है वही अन्दर ही में रहता है। सत्य आनन्द रूप ब्रह्म का आभास सभ इन्द्रियों में प्रकाश रूप है। जिसका वही मेरा आत्मस्वरूप है अर्थात वह मैं ही हूं। जो अडंज पिंडज स्थावर और उष्म जो चार प्रकार के जीवों में निवास करता है जो स्वरुप अनेक पदार्थो गत रहने पर एक ही है वह मैं हूं बुद्धि से किये गये प्रपञ्च जो है वही मिथ्या है वह मेरा रूप नहीं है इस ज्ञान को स्वतः ज्ञान कहते हैं। पर भक्ति जो कही गयी है वह और स्वतः ज्ञान को नो का रूप एक है और फल भी एकही मिलता हैं

अथ सृष्टि प्रलय को संक्षेप में कहता हूँ।

सर्व व्यापक सर्व शक्ति मान ईश्वर की इच्छा हुई कि मैं एक रूप से अनेक रूप हो जाऊं तब सारी सृष्टि तैयार हो गई जो कि पहले कही गयी है।

जब ईश्वर ने इच्छा की कि मैं अनेक रूप से एक रूप हो जाऊं तब सकल इन्द्रियां अपने कारण रूप तत्वों में मिल गये इसके बाद सूर्य ने अपने संपूर्ण कलाओं के साथ उदय को प्राप्त हुये सम्पूर्ण संसार को भस्म कर दिये। इसके बाद मेघों ने सारी शक्ति के अनुसार वर्षा करना आरम्भ कर दिये सारी पृथ्वी जल में डूब गयी तब पवन ने अपने प्रचण्ड रूप को धारण किया और सब जलों को सुखा दिया। वायु आकाश में आकाश अहंकार में और तमोगुण में और तमोगुण प्रकृति

में प्रकृति प्रधान रूप माया में और सम्पूर्ण चराचरों के साथ पर ब्रह्म में लीन हो गई जिन जीवों की जैसी वासना हृदय में भरी रहती उनकी मुक्ति नहीं कर वासना नुसार जन्म लेना पड़ता है।

जिन जीवों के हृदय में वासना नहीं रहती है किसी प्रकार का संकल्प नही रहता है उन जीवों काल म सर्व व्यापक सर्व साक्षी ईश्वर मे होता है जैसे उपाधि भेद से घराकाश मठा काश ऐसा भेद होता है यथार्थ में सब कुछ उपादान रूप घट तथा मठ के नही रहने पर महाकाश रूप हो। क्योंकि उसका यथार्थ रूप महाकाश ही है इसी प्रकार चिदाकाश भूताकाश के नाश से चिदा काशही है। इसी तरह सर्व पदार्थ समान्य रूप ब्रह्महीं है का रूप है, जो कुछ दृश्य मान माया के रचे हुआ पदार्थ दिख पड़ते है वास्तव में ब्रह्म से किसी काल में भिन्न नहीं होते क्योंकि जब ब्रह्म सर्व व्यापक है कोई स्थान उसमें पृथक नही है कहना ही कैसे मुक्ती संगत हो शकता है कि ब्रह्म से भिन्न कोई पदार्थ भी है। तब तो पूछना योग्य होगा कि वह पदार्थ किस स्थान पर रहता है क्योंकि सर्वव्यापक ब्रह्म के सिवा दूसरे पदार्थ के स्थान ही दो सर्व व्यापक वस्तु एकही स्थान में कभी नहीं रह सकते, इसी सिद्धान्त को लेकर सर्वमान्य उपनिषदों में सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह ना नास्ति किंचन इसका भावार्थ है कि सभ कुछ ब्रह्म ही है। इस संसार में कुछ भी दूसरा पदार्थ नहीं है।

इति जीव ब्रह्म अभेद निरुपण नाम एकादश तरंग

श्री: रामटहल चौबे उपनाम भटकुआ चौबे तस्यात्मज श्रीः विष्णुदयाल चौबे तस्यात्मज श्री मान् ब्रह्म विद्या विशारद वामन चतुर्वेदी कृत तत्व विभाग नाम (आत्म ज्ञान) का पुस्तक है ।

मु० विशुनपुरा, पो० हुसेपुर नव्द
थाना बसंतपुर, जिला सारन

काशी के प्रसिद्ध दर्शनिक एवं दण्डी स्वामियों ने इस ग्रन्थ की भूरि २ प्रशंसा की है ।
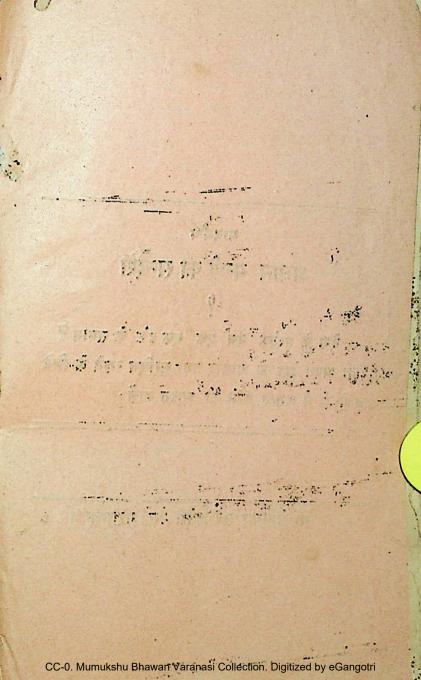
माननीय

प्रधान मन्त्री का सन्देश

!

देश के प्रत्येक बच्चे एक एक ईंट के समान हैं अतः अपने देश को आजाद तथा सुरक्षित रखने के लिये अभी ही से कसरत करने की आदत डालें।

श्री रौनियार सब हितैषी प्रेस महाराजगंज

जप तप संजम साधना, सब सुमिरनके माहिं।
कबिरा जानै राम जन, सुमरन सम कछु नाहिं॥
राजा राना राव रँक, बड़ा जो सुमरे राम।
कह कबीर बन्दा बड़ा, जो सुमरे निष्काम॥
सुमरनसे मन लाइये, जैसे दीप पतङ्ग।
प्राण तजै छिन एकमें, जरत न मोरै अङ्ग॥
चिन्ता तो हरि नामकी, और न चितवै दास।
जो कछु चितवै नाम बिनु, सोई कालकी फांस॥
कबिरा हरिके नाममें, बात चलावे और।
तिस अपराधी जीवको, तीन लोक कित ठौर॥
राम नामको सुमरते, उधरे पतित अनेक।
कह कबीर नहिं छाड़िये, राम नामकी टेक॥
राम नामको सुमिरते, अधम तरै संसार।
अजामील गनिका स्वपच, सदना सवरी नार॥
बाहर क्या दिखराइये, अन्तर जपिये राम।
कहा काज संसारसे, तुझे धनीसे काम॥
रग रग बोले रामजी, रोम रोम रङ्कार।
सहजै ही धुनि होत है, सो ही सुमरन सार॥
सहजै ही धुनि लगि रही, कह कबीर घट मांहिं।
हिरदय हरि हरि होत है, मुखकी हाजत नाहिं॥
अजपा सुमरन घट विषय, दीन्हा सिरजनहार।
ताही सो मन लगि रहा, कहै कबीर विचार॥
राम नामको सुमर ले, हंसि कै भावै खीज।

उलटा सुलटा ऊपजै, ज्यों खेतनमें बीज ॥
सांस सुफल सोइ जानिये, हरि सुमिरनमें जाय ।
और सांस यों ही गये, करि करि बहुत उपाय ॥
जाकी पूंजी सांस है, छिन आवै छिन जाय ।
ताको ऐसो चाहिये, रहै राम लौ लाय ॥
कहा भरोसो देहको, विनसि जात छिन मांहिं ।
सांस सांस सुमरन करो, और यतन कछु नाहिं ॥
जीवन थोरा ही भला, जो हरि सुमरन होय ।
लाख बरसका जीवना, लेखे धरै न कोय ॥
कहता हूं कहि जात हूं, सुनता है सब कोय ।
सुमरनसों भल होयगा, नातर भला न होय ॥
कबिरा सूता क्या करै, जागो जपो मुरारि ।
एक दिना है सोवना, लम्बे पावँ पसारि ॥
कबिरा मुख सो ही भलो, जा मुख निकसै राम ।
जा मुख राम न नीकसै, सो मुख है किस काम ॥
कथा कीरतन कलि विषे, भवसागरकी नाव ।
कह कबीर या जगत्में, नाहीं और उपाव ॥
देह धरेका फल यही, भज मन कृष्णमुरार ।
मनुषजनमकी मौज यह, मिलै न बारम्बार ॥
कृष्णनाम गुन गुप्तधन, पावैं हरिजन सन्त ।
करे नहीं जो कामना, दिन दिन होय अनन्त ॥
महिमा माधव नामकी, किन्हे न पाया पार ।
विधि हर शारद शेष सुर, नारद सनतकुमार ॥

अब नर मनमें चेत कर, काया कच्चा कोट।
जम तोड़ैंगे पलकमें, ना कछु इसके ओट॥
आया था कछु लाभको, खोय चल्या सब मूल।
फिर जावोगे सेठ पां, पलै पड़ैगी धूल॥
ज्यूं तीरथ मेला मँडा, मिला आय संजोग।
आप आपने जायँगे, सभी वटाऊ लोग॥
परनिन्दा परद्रोहमें, दिया जनम सब खोय।
कृष्ण नाम सुमरा नहीं, तिरना किस बिध होय॥
धन जौबन यों जायंगे, जा बिधि उड़त कपूर।
नारायण गोपाल भज, क्यों चाटै जगधूर॥
नारायण सतसङ्ग कर, सीख भजनकी रीत।
काम क्रोध मद लोभमें, गई आर्बल बीत॥
धन बिद्या गुन आयु बल, यह न बड़प्पन देत।
नारायण सोई बड़ा, जाका हरिसों हेत॥
नारायण हरिभजनमें, तूं जिन देर लगाय।
का जाने या देरमें, श्वासा रहे कि जाय॥
नारायण बिन बोधके, पण्डित पशू समान।
तासों अति मूरख भला, जो सुमरे भगवान॥
विद्या वित्त स्वरूप गुण, सुत दारा सुख भोग।
नारायण हरि भक्ति बिन, यह सब ही है रोग॥
सन्त सभा झांकी नहीं, किया न हरिगुनगान॥
नारायण फिर कौन विध, तू चाहत कल्यान॥
नारायण सुख भोगमें, मस्त सभी संसार।

कोउ मस्त वा मौजमें, देखो आंख पसार ॥
दो बातन को भूल मत, जो चाहत कल्यान ।
नारायण इक मौतको, दूजे श्रीभगवान ॥
सन्त जगतमें सो सुखी, मैं मेरीका त्याग ।
नारायण गोविन्द पद, दृढ़ राखत अनुराग ॥
नारायण हरि लगनमें, यह पांचों न सुहात ।
विषय भोग निद्रा हंसी, जगत प्रीत बहु बात ॥
सेवाको दोनों भले, एक सन्त इक राम ।
राम जु दाता मुक्तिके, सन्त जपावें नाम ॥
साधन यज्ञ अनेकसे, सरै न एकौ काम ।
विना भक्ति भगवन्तके, जिउ न लहै विश्राम ॥
ग्रन्थ पन्थ सब जगतके, बात बतावत तीन ।
राम हृदय मनमें दया, तन सेवामें लीन ॥
तन पवित्र सेवा किये, धन पवित्र किये दान ।
मन पवित्र हरि भजनतें, होत त्रिविध कल्यान ॥
सकल रैन सोवत गई, उग्या चहै अब भान ।
अब भी भज भगवानको, जो चाहै कल्यान ॥
मन मगरूरी त्यागकर, रटिये कृष्ण मुरार ।
नौका बीच समुद्रके, होय भजनसे पार ॥
कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
ऐसे होइ कब लागिहौ, तुलसीके मन राम ॥
राम नाम जपते रहो, जब लगि घटमें प्रान ।
कबहुँ तो दीनदयालुके, भनक परैगी कान ॥

एक भरोसा एक बल, एक आस विश्वास।
स्वाति सलिल हरि नाम है, चातक तुलसीदास॥
पढ़पढ़के सब जग मुवा, पण्डित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेमके, पढ़ै सो पण्डित होय॥
हाथी घोड़े धन घना, चन्द्रमुखी बहु नार।
नाम विना यमलोकमें, पावत दुःख अपार॥

मनहर कवित्त

घरी घरी घटत छीजत जात छिन छिन
भीजत हि गलि जात माटीको सो ढेल है,
मुकुतिके द्वार आइ सावधान क्यों न होइ
बेर बेर चढ़त न तियाको सो तेल है।
करि ले सुकृत हरि भजि ले अखण्ड नर
याहीमें अन्तर परै यामें ब्रह्म मेल है,
मानुपजनम यह जीत भावै हार अब
सुन्दर कहत यामें जुवाको सो खेल है॥

किरीट सवैया

पाइ अमोलक देह यहै नर, क्यूं न विचार करै दिल अन्दर
कामहु क्रोधहु लोभहु मोहहु, लूटत है दसहू दिसि द्वन्दर
तूं अब बांछत है सुरलोकहि, कालहु पाइ परैं सु पुरन्दर
छांड़ि कुबुद्धि सुबुद्धि हृदै धरि, आतमराम भजै किन सुन्दर

मत्तगजेन्द्र सवैया

ग्रीव त्वचा कटि है लटकी कच हूं पलटे अजहूं रत वामी
दन्त गये मुखके उखरे नखरे न गये सु खरो खर कामी

कम्पत देह सनेह सुदम्पति, संपति जंपति है निसि जामी
सुंदर अंतहु भौ न तज्यो, न भज्यो भगवंत सु लौन हरामी
कौन कुबुद्धि भई घट अन्दर, तूं अपने प्रभुसों मन चोरै।
भूलि गयो विषयासुखमें सठ, लालच लागि रह्यो अति थोरै
ज्यों कोउ कंचन छार मिलावत, ले करि पत्थर सों नग फोरै।
सुन्दर या नरदेह अमोलक, तीर लगी नउका कत बोरै ॥
देह सनेह न छाड़त है नर, जानत है थिर है यह देहा।
छीजत जात घटै दिन ही दिन, दीसत है घटको नित छेहा॥
काल अचानक आइ गहै कर, ढाइ गिराइ करै तनु खेहा।
सुन्दर जानि यहै निहचै धरि, एक निरंजन सों कर नेहा॥
तू कछु और विचारत है नर, तेरो विचार धरयोहि रहैगो
कोटि उपाय करै धनके हित, भाग लिखो तितनोहि लहैगो
भोरकि सांझघरी पलमांझ सु, काल अचानक आइ गहैगो
राम भज्यो न कियो कछु सुकृत, सुन्दर यों पछताइ रहैगो ॥
सोइ रह्यो कहां गाफिल ह्वै करि, तो सिर ऊपर काल दहारै।
धामस धूमस लागि रह्यो सठ, आइ अचानक तोहिं पछारै॥
ज्यों वनमें मृग कूदत फांदत, चित्र गले नखसूं उर फारै।
सुंदर काल डरै जिनके डर, ता प्रभुको कहु क्यों न सँभारै
सन्त सदा उपदेस बतावत, केस सबै सिर सेत भये हैं।
तू ममता अजहूं नहिं छांड़त, मौतहु आइ संदेस दये हैं॥
आजकिकालचलै उठि मूरख, तेरेहि देखत केते गये हैं।
सुन्दर क्यों नहिं राम सम्हारत, या जगमें कहु कौन रये हैं॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

...नी होनी चाहिए। आवेदन पत्र
...हस्ताक्षरकर्ता के पास ३१-१२-६२
...पहुंच जाने चाहिए।

...सी. कंकश रेजीडेन्ट इंजीनि-
...म्युनिसपल बोर्ड, खुर्जा (उ. प्र.)।

(३३२१४)

नोटिस

टेन्डर नोटिस

...जलाशय के स्पिल्वे पर निम्नां-
...सामान की पूर्ति के लिए, अलग-
...मुहरबन्द टेंडर, पांच बराबर
...में, १५-१-६३ को, ३ बजे अप-
...तक स्वीकार किए जावेंगे।

सामान का नाम	हर भाग की मात्रा
बजरी	१,००,००० घ. फुट
बालू	२५,००० घन फुट

...डर के कागज अधोलिखत कार्या-
...से १० रु. प्रति सेट के हिसाब से
...जा सकते हैं। कार्य ३०-४-६३
...पूरा होना है। धरोहर राशि ४००
...

...मास तथा नियमानुसार स्वीकार्य महंगाई
तथा अन्य भत्ते।

उनको चिकित्सालय की सीमा के अन्दर रहना होगा तथा एकल स्थान की व्यवस्था होगी। उनको भार रहित होना चाहिए।

भावी प्रत्याशियोंको अपने प्रमाणपत्रों की प्रतिलिपियों तथा अपने शैक्षिक जीवन के पूर्ण विवरण के उल्लेख सहित चीफ मेडिकल आफीसर, चंडीगढ़ के पास ३० दिसम्बर, ६२ तक आवेदन करना चाहिए।

चीफ मेडिकल आफीसर, चंडीगढ़।
नं. पी. आर. (सी)/६२/१६९२

(२९९८१)

...स्टेशन में पंजीकृत न...
वे इस उद्देश्यके लिए ।वगत अनुबन्ध तथा अनुभव के सम्पूर्ण विवरण के उल्लेख सहित अपने आवेदनपत्र २ जनवरी १९६३ से पूर्व प्रस्तुत करें। यदि उनके आवेदनपत्र स्वीकृत हो गए तो उनको टेंडर प्रपत्र जारी किए जाएंगे। टेंडर प्रपत्र तथा कार्य की अनुसूची उक्त स्टेशन के सीनियर इक्विपमेंट आफीसर द्वारा १८ जनवरी १९६३ को प्रातः ९ से मध्यान्ह १२ बजे तक दिए जायेंगे।

डी. ए. २७६ (७)/६२

(११३-७)

नोटिस

"उत्तर प्रदेश सरकार"
"स्वायत्त शासन अभियन्त्रण विभाग"
"अल्पकाल निविदा सूचना"

उपप्रभावाय अधिकारी द्वारा निम्न कार्य के लिये मुद्रांकित दर प्रस्ताव ७ जनवरी, १९६३ को दिन के ३-०० बजे तक आमंत्रित किये जाते हैं और उसी दिन ३-३० बजे खोले जायंगे। रिक्त फार्म कार्यालय में किसी दिन प्राप्त किये जा सकते हैं। ड्राइंग किसी भी दिन कार्यालय में देखी जा सकती है।

...पुनर्गठन, ...
नहीं है। यह ...
तीसरी योजनाके लिए प्रति...
वाली एक अरब डालरक...
शामिल हो जाता।

पश्चिमी देशोंके लिए ...
यह था कि लड़ाई समाप्त ...
इतना भारी व्यय वहन क...
था। आपत्कालमें ऐसा ...
था।

दूसरा प्रश्न यह था ...
बदलेमें क्या दे सकता है ...
पहले यह कहा जाता था ...
साम्यवादी चीनके विरुद्ध ...
है। अब श्री नेहरूके हालक...
यह स्पष्ट है कि भारत ...
नीतिपर कायम है, चीनी ...
गये हैं तथा श्री कृष्णमेनन ...
कमजोरीके लिए जिम्मेदार न...
उन्हें कुछ समय बाद वापस ...
सकता है। इस प्रकार श्री ...
विचाराधारा स्पष्ट हो गयी ...
नेहरूकी भेंटसे पश्चिमी रा...
सन्देह स्पष्ट हो जाता है कि ...
कभी भी खतरेके प्रति दो...

एक कार्यकर्त्री घायल जवानोंके घरको पत्र लिख रही हैं।

...मंडलमें

...ावना

...४ दिसम्बर (नभाटा)। ...हेरूने चीनी हमलेसे ... हटा दिया था, कुछ ... आयंगे।

...ह भारतको नीचा दिखाना ...और विश्वको यह दिखाना

मंगोलियाके प्रश्नपर रूस व चीनके संबंध और बिगड़े

नयी दिल्ली, २४ दिसम्बर (नभाटा): सुयोग्य प्रेक्षकोंके अनुसार चीन-मंगोलिया सीमापर विचार के लिए पेकिंग द्वारा बाह्य मंगोलियाके प्रधानमंत्रीको बुलावा मास्को और पेकिंगके बीच चल रहे शीत-युद्धके एक कदम और आगे बढ़...

...करना सारे संसारके लिए विनाशकारी सिद्ध होगा।

भारत किसी भी रक्षा समझौतेमें शामिल हुए बिना संसारके सभी देशोंके साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। किसी भी रक्षा समझौतेमें शामिल होनेसे उसे या संसारको कोई लाभ नहीं होगा।

भारत मित्र देशोंकी सहायता स्वीकार करेगा। आपत्कालमें अमरीका तथा ब्रिटेनने जो सहायता दी है उसके हम आभारी हैं। किन्तु भारतकी रक्षा करने और उसे शक्तिशाली बनानेका भार भारतपर ही है।

सीमापर वर्तमान युद्ध-विरामका अर्थ यह नहीं कि संकट समाप्त हो गया है। लोगोंको यह अनुभव करना चाहिए कि देशके रक्षा साधनोंमें वृद्धि करना उनकी जिम्मेदारी है।

चीनी जनता व संस्कृतिसे हमारा झगड़ा नहीं

...तन युन शान की आखोंमें ... समय आंसू छलछला ... प्रधानमंत्री नेहरूने कहा ... चीनी जनता, उसकी संस्कृति ... सभ्यतासे कोई झगड़ा नहीं ...

डा. शान पिछले २० वर्षोंसे ... संस्कृति एवं सभ्यतापर शान्ति... तनमें अनुसंधान कर रहे हैं। ... तक उन्होंने गुरुदेव रवीन्द्र... टैगोरके साथ काम किया ...

हम उस दिनकी प्रतीक्षामें हैं, ... की जनताके साथ हमारा मैत्रीपूर्ण ... पुनः स्थापित होगा।

प्रधानमन्त्रीने कहा—युद्ध ... हैं, क्योंकि वह लोगोंके मन एवं ...

(शेष अंतिम पृष्ठ कालम छः में)

समाचारपत्रोंकी आजादीमें दखल नहीं